ੴ सतिगुर प्रसादि ॥
गुर गिआन अंजन सचु नेत्री पाइआ ॥
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ ॥

मासिक

गुरमति ज्ञान

आषाढ़-सावन, संवत् नानकशाही ५४८
वर्ष ९ अंक ११ जुलाई 2016

संपादक : सतविंदर सिंघ फूलपुर
सहायक संपादक : जगजीत सिंघ
गुरप्रीत सिंघ भोमा

चंदा

सालाना (देश)	१० रुपये
आजीवन (देश)	१०० रुपये
सालाना (विदेश)	२५० रुपये
प्रति कापी	३ रुपये

चंदा भेजने का पता
सचिव, धर्म प्रचार कमेटी
(शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी)
श्री अमृतसर-१४३००६
फोन : 0183-2553956-60
एक्सटेंशन नंबर
वितरण विभाग **303** संपादकीय विभाग **304**
फैक्स : 0183-2553919
e-mail : gyan_gurmat@yahoo.com
website : www.sgpc.net

ISSN 2394-8485

विषय-सूची

गुरबाणी विचार

करम करतूति बेलि बिसथारी राम नामु फलु हूआ ॥
तिसु रूपु न रेख अनाहदु वाजै सबदु निरंजनि कीआ ॥१॥
करे वखिआणु जाणै जे कोई ॥ अंम्रितु पीवै सोई ॥१॥ रहाउ ॥
जिन्ह पीआ से मसत भए है तूटे बंधन फाहे ॥
जोती जोति समाणी भीतरि ता छोडे माइआ के लाहे ॥२॥
सरब जोति रूपु तेरा देखिआ सगल भवन तेरी माइआ ॥
रारै रूपि निरालमु बैठा नदरि करे विचि छाइआ ॥३॥
बीणा सबदु वजावै जोगी दरसनि रूपि अपारा ॥
सबदि अनाहदि सो सहु राता नानकु कहै विचारा ॥४॥ *(पन्ना ३५१)*

श्री गुरु नानक देव जी सिमरन की महिमा का बखान करते हुए आसा राग में उच्चारण किए गए उपरोक्त शबद में फरमान कर रहे हैं कि अच्छे कर्मों द्वारा मानव का आचरण ऊंचा बनता है। ऊंचे आचरण रूपी बेल को ही प्रभु-नाम-सिमरन का फल लगता है अर्थात् प्रभु-नाम सिमरन के साथ-साथ मनुष्य के कर्मों का अच्छा होना भी ज़रूरी है। प्रभु ऐसे (आचरण वाले) मनुष्य के अंदर नाम-सिमरन का प्रवाह चला देते हैं, जो मानो एक संगीत है। प्रभु एक समान प्रभावी है। उसका कोई रूप-रेख-आकार बयान नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य सिमरन द्वारा प्रभु के साथ सांझ पा ले, प्रभु का गुणगान करता रहे तो वह आत्मिक आनंद की अनुभूति लेता है। जिन जीवों ने नाम-रस को पीया है, आत्मिक आनंद अनुभव किया है वे मस्त हो गए। उनके माया के बंधन टूट गए। उनके अंदर परमात्मा की ज्योति टिक गई अर्थात् उनको अपने अंदर प्रभु-ज्योति टिकी होने का आभास हो गया। ऐसे मनुष्यों ने माया में रचित होकर व्यर्थ की भाग-दौड़, भटकना छोड़ दी। ऐसे मनुष्य फिर सारे जीवों में प्रभु का ही दीदार करते हैं। उनको सारी सृष्टि में, सारे शरीरों में प्रभु-लीला ही दृष्टिगोचर होती है। प्रभु झगड़े रूपी संसार में से निराला होकर विराजमान है और संसार में प्रतिबिंब की भांति व्यापक भी है।

शबद की अंतिम पंक्तियों में गुरु जी फरमान कर रहे हैं कि नाम-सिमरन में रंगा जीव (असल योगी की भांति) परमात्मा के नाम-सिमरन की वीणा हर दम बजाता रहता है अर्थात् नाम-सिमरन का जाप अखंड चलता रहता है। एक-रस नाम-सिमरन करते रहने से जीव सदा के लिए प्रभु-रंग में रंगा रहता है, आत्मिक आनंद से सराबोर रहता है।

संपादकीय

मीरी-पीरी : वास्तविक जीवन का आधार

मीरी-पीरी का सिद्धांत मानवीय शख़्सियत की सम्पूर्णता का प्रतीक है। यह धर्म की व्यापकता का आधार है। यह आदर्शक राजनीति, तंदरुस्त समाज तथा हलीमी राज्य का मॉडल है। गुरबाणी में सैद्धांतिक रूप में इसकी विस्तृत व्याख्या मिलती है तथा श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब के समय इसका प्रत्यक्ष रूप सामने आता है।

अंतर-मुखता एवं बाहर-मुखता मनुष्य की दो मानसिक वृत्तियां हैं। इसको प्रवृत्ति-निवृत्ति, दीन-दुनी, अंजन-निरंजन, योग-भोग आदि संकल्पों द्वारा समझा जा सकता है। भारत में इन विपरीत मानसिक वृत्तियों पर आधारित प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग प्रचलित रहे हैं। प्रवृत्ति का अर्थ है-- मन का सांसारिक पदार्थों की ओर झुकाव तथा निवृत्ति का अर्थ है-- दुनियावी पदार्थों से उपरामता। इन दोनों मार्गों में एकसुरता की कमी के कारण प्रवृत्ति मार्ग वाले सांसारिकता में खचित होकर परमार्थ से विहीन रह गए तथा निवृत्ति मार्ग वाले घर-परिवार त्यागकर समाज के लिए निठल्ले साबित हुए। ऐसे में ये दोनों मार्ग धर्म तथा समाज की अधोगति का कारण बने। जितनी देर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों मानसिक वृत्तियों, दोनों मार्गों के बीच एकसुरता कायम नहीं की जाती उतनी देर तक आदर्शक धर्म, आदर्शक समाज तथा आदर्शक राजनीति की कल्पना नहीं की जा सकती। श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों हठ हैं तथा वास्तविक धर्म की वह शक्ति हैं जो इन दोनों में एकसुरता पैदा करती हैं :

परविरति निरविरति हाठा दोवै विचि धरमु फिरै रैबारिआ ॥ *(पन्ना १२८०)*

यह एकसुरता सहज की अवस्था है, जहां *"सहजे ग्रिह महि सहजि उदासी ॥"* वाली स्वस्थ जीवन-जाच है। दोनों मार्गों में एकसुरता वाली यह जीवन-जाच ही मनुष्य का हलत-पलत संवार सकती है। यह राज-योग का तख़्त है। इसके राज-योग में एकसुरता के कारण इसका राज्य ज़ालिम वृत्ति वाला नहीं बल्कि निर्मल कार्य (सेवा) इसका आदर्श है। यह तो *"हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ खावंदिआ विचे होवै मुकति ॥"* वाली युक्ति है। यही मीरी-पीरी का आधार है।

पंचम पातशाह श्री गुरु अरजन देव जी ने हलत-पलत, दीन-दुनी की एकसुरता को आगे बढ़ाते हुए *"हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥"* के सिद्धांत द्वारा श्रेष्ठ धर्म की परिभाषा मानवता के समक्ष पेश की। परमात्मा की भक्ति (पीरी का कर्म) तथा समाज-भलाई के काम (मीरी का कर्म) एक ही शख़्सियत के गुण हैं। पीर ने धार्मिक कर्म के साथ समाज की भलाई के काम भी करने हैं। अगर इस मंतव्य की पूर्ति में कोई विघ्न डालने की कोशिश करे तो शस्त्र-शास्त्र के सिद्धांत को अमल में लाने से पीर ने कृपाण भी उठानी है। देग के साथ तेग का यह सिद्धांत मीर के रूप में श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब के समय सिक्खी जीवन-जाच के अभिन्न अंग के रूप में सामने आया। मीर ने हमेशा पीर के नेतृत्व में रहकर राज-सत्ता को चलाना है। मीरी-पीरी ने भक्ति-शक्ति के रूप में धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में गाड़ी के दो पहियों की तरह

एक-दूसरे के पूरक होकर चलना है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। अधूरे होने के कारण जीवन-लय बिगड़ जाती है। भक्ति के बिना शक्ति अक्सर दोहरा रवैया अख़्तियार कर लेती है। मज़लूम के सामने यह प्राय: ज़ालिम बन जाती है तथा अपने से जाबिर के सामने कई बार कायर साबित होती है। सदियों का भारतीय इतिहास इसकी उदाहरण रहा है। दूसरी तरफ शक्ति के बिना भक्ति पर खतरे के बादल मंडराने लगते हैं। आपसी संतुलन न होने के कारण एक-दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में अनावश्यक दख़लंदाज़ी ने भी मनुष्य के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अक्सर पीर ने धर्म की आपदा का भय देकर मीर के अधिकार-क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप किया है। इसी प्रकार प्राय: मीर ने भी अपनी हकूमत के नशे में पीर को बहुत प्रताड़ित किया है।

ऐसी दशा में गुरमति का भक्ति-शक्ति (पीरी-मीरी) के सुमेल का मार्ग भारतीय समाज के लिए प्रकाश-स्तंभ साबित हुआ। इसकी भक्ति *"अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ॥"* वाली भक्ति नहीं। यह भक्ति धर्म की रक्षा हेतु शीश कटवाने का आदर्श पेश करती है। ऐसी भक्ति की शक्ति कृपाण से ज़ालिम का मुंह मोड़ना जानती है। यह ज़ालिम हमलावर को देखकर *"कोई हूं पीर वरज रहाए"* वाली कायरता की पक्षधर नहीं। भक्ति में से उपजी शक्ति *"अति ही रन मै तब जूझ मरों"* का जज़्बा पैदा करती है।

मीरी-पीरी के सिद्धांत ने मनुष्य के व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों रूप से अगुआई करनी है। धर्म तथा राजनीति के सम्बंध में अगर राजनीति धर्म को अपने हित में इस्तेमाल करने की कोशिश करेगी या धर्म राजनीति की अधीनगी स्वीकार कर लेगा तो मीरी-पीरी के सिद्धांत की घोर उल्लंघना होगी। धर्म तथा राजनीति के सम्बंध में मीरी-पीरी का संकल्प हर समय सही दिशा देने के योग्य है। आज के लोकतंत्र के युग में बहुधर्मी देशों में अल्पसंख्यक लोगों के धर्म के सिद्धांत असुरक्षित हैं। अल्पसंख्यक लोगों को बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। धर्म की रक्षा के लिए राज रूपी बाड़ का होना आवश्यक है। धर्म एवं राजनीति में विचार-समानता ही लोक-स्वतंत्रता का आदर्श हो सकता है। धर्म एवं राजनीति में विचार-समानता होने के बावजूद भी इन दोनों के अधिकार-क्षेत्र अलग-अलग हैं। राजनीति ने धर्म की योग्य अगुआई में कार्यशील रहना है। दार्शनिक रूप से मीरी रजो, तमो, सतो तीन गुणों तक सीमित है, इसलिए मीरी की पूरे विश्व पर राज्य करने की लालसा ने मानवता को बड़े भयानक दुख दिए हैं। पीरी चौथे पद का गुण है, जिसे सहज अवस्था कहते हैं। पीरी की अगुआई में मीरी के तीनों गुण संतुलन में आ जाते हैं। इस प्रकार रूहानी, सदाचारक तथा पदार्थक एकता में से मानव-समानता, परोपकार, समाज-सेवा, दया, इंसाफ आदि गुणों वाले हलीमी राज्य का सपना साकार होता है।

इस धरती पर मानव-शख़्सियत का स्वरूप मीरी-पीरी का धारक होकर ही संपूर्ण होना था, इसलिए श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने खुद मीरी-पीरी की कृपाणें धारण कर मानव-शख़्सियत के स्वरूप को संपूर्ण करने का व्यवहारिक काम किया तथा सिक्खों को भी शस्त्रधारी बनाया। दशमेश पिता ने मीरी-पीरी को दो-धारी खंडे का स्वरूप देकर, सिक्खों को खंडे-बाटे की पाहुल छकाकर खालसा के रूप में उन्हें धरती का संपूर्ण मनुष्य बना दिया। ❁

श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब

-डॉ. राजेंद्र सिंघ 'साहिल'*

आठवें पातशाह श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब का जन्म ८ सावन, संवत् १७१३ बिक्रमी तद्नुसार ७ जुलाई, सन् १६५६ ई को कीरतपुर साहिब में हुआ। सप्तम पातशाह श्री गुरु हरिराय साहिब आपके पिता थे जबकि आपकी माता का नाम माता किशन कौर था।

श्री गुरु हरिराय साहिब ने ज्योति-जोत समाते समय सभी प्रकार से श्रेष्ठ एवं समर्थ मानते हुए श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब को गुरुआई की ज़िम्मेदारी सौंपी। इस समय अर्थात् सन् १६६१ ई में श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब की आयु मात्र पांच वर्ष थी। बाल अवस्था में गुरु-पद पर सुशोभित होने के कारण आपको बाल-गुरु भी कहा जाता है। आप जी ने मात्र तीन वर्ष तक सिक्खों का नेतृत्व किया। सन् १६६४ ई में मात्र आठ वर्ष की उम्र में गुरु जी ज्योति-जोत समा गये।

गुरु जी का जीवन-काल केवल आठ वर्ष का था परंतु यह छोटा-सा जीवन भी ऐसे अनेक प्रसंगों से भरा पड़ा है जो गुरु जी के विराट व्यक्तित्व की अद्भुत झांकी दिखा जाते हैं।

गंभीर एवं सहनशील : श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब अत्यंत गंभीर एवं सहनशील प्रवृत्ति के थे। अत्यंत छोटी अवस्था होते हुए भी आप आध्यात्मिक साधना में रत रहते। गुरु-पिता श्री गुरु हरिराय साहिब को सुपुत्र की आध्यात्मिक सामर्थ्य का बाखूबी अंदाज़ा था। गुरु-पिता अक्सर बड़े पुत्र रामराय और छोटे सुपुत्र श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब की परीक्षा लेते रहते।

धार्मिक कट्टरता के विरोधी : मुगल दरबार में गुरबाणी की गलत व्याख्या करके बादशाह औरंगज़ेब को खुश करने वाले बड़े पुत्र रामराय का सप्तम पातशाह श्री गुरु हरिराय साहिब ने परित्याग कर दिया था। जब रामराय को श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब के गुरगद्दी पर आसीन होने का पता चला तो वह ईर्ष्या से बौखला उठा। उसने औरंगज़ेब को गुरु जी के विरुद्ध भड़काया। औरंगज़ेब ने गुरु जी को दिल्ली आने का आदेश दिया। गुरु जी मुगल बादशाह की धार्मिक कट्टरता से क्षुब्ध थे, अतः उन्होंने बादशाह के बुलावे पर दिल्ली जाना अस्वीकार कर दिया। इस पर औरंगज़ेब ने गुरु-घर के श्रद्धालु अंबर नरेश राजा जय सिंह को यह ज़िम्मेदारी सौंपी कि वे किसी तरह गुरु जी को दिल्ली लायें। गुरु जी ने राजा जय सिंह का दिल्ली आने का आग्रह तो मान लिया परंतु साथ यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे बादशाह से नहीं मिलेंगे।

विनम्र एवं क्षमाशील : दिल्ली जाते समय मार्ग में अंबाला के निकट पंजोखरा साहिब में गुरु जी ने विश्राम किया। यहां एक अभिमानी पंडित ने गुरु जी की आध्यात्मिक सामर्थ्य का उपहास करते हुए उन्हें गीता में दर्ज श्लोकों की व्याख्या करने की चुनौती दी। गुरु जी बोले, यह कार्य तो हमारा कोई साधारण सिक्ख भी कर सकता है। गुरु जी के आदेश पर जब एक किरती

*१/३३८, 'स्वप्नलोक', दशमेश नगर, मंडी मुल्लांपुर दाखा (लुधियाना), पंजाब-१४११०१, फोन : ९४१७२-७६२७१

सिक्ख ने गीता में दर्ज श्लोकों की व्याख्या की तो अभिमानी पंडित का घमंड चूर-चूर हो गया। गुरु जी ने उसे विनम्रता अपनाने की शिक्षा दी और क्षमा कर दिया।

आत्माभिमानी : दिल्ली पहुंचकर गुरु जी राजा जय सिंह के महल में ठहरे। गुरु जी की महिमा से हैरान औरंगज़ेब ने राजा जय सिंह से कहा कि वह गुरु जी की आत्मिक शक्ति की परीक्षा ले। राजा जय सिंह ने महारानी के अलावा अन्य सतियों और दासियों को एक जैसे वस्त्राभूषण पहना दिए और गुरु जी से महारानी को पहचानने के लिए कहा। गुरु जी ने उस भीड़ में से महारानी को आसानी से पहचान लिया।

गुरु जी दिल्ली में रहकर प्रचार-कार्य में जुटे रहे परंतु औरंगज़ेब से मिलने के लिए तैयार नहीं हुए।

मानवता की सेवा में रत : गुरु जी के दिल्ली-प्रवास के दौरान ही वहां चेचक की बीमारी फैल गई। गुरु जी चेचक रोगियों की देखभाल और सेवा में व्यस्त हो गये। अंततः गुरु जी भी चेचक की गिरफ़्त में आ गये। जीवन-अवधि पूर्ण होने का आभास पाते ही गुरु जी ने सिक्खों को 'बाबा बकाला' कहकर अगले गुरु श्री गुरु तेग बहादर साहिब के बारे में संकेत किया और ३ वैसाख, संवत् १७२१ बिक्रमी तद्नुसार ३० मार्च, सन् १६६४ ई को ज्योति-जोत समा गये।

राजा जय सिंह के महल के स्थान पर आजकल गुरुद्वारा बंगला साहिब सुशोभित है।

कविता

श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी

गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, अपना-बेगाना न रहे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, ऊंच-नीच का माना न रहे।
फल की करो न ख्वाहिश, बस कर्म करते जाईए,
फिर 'अरशी' चौरासी में कभी, आना-जाना न रहे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, मिट जाएं कुल अंधेरे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, सताएं न फिर लुटेरे।*
तुम एक कदम चलो तो, प्रभु सौ कदम बढ़ेगा,
'अरशी' गुरु की गोदी में, फिर पाओगे बसेरे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, तुम 'तुम' न रहोगे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, सदा खेड़े में रहोगे।
देगों के उबाले हों, सर पे हो आरा या खुर्पी,
हर जुल्मों-सितम 'अरशी', सद-शुक्र सहोगे।
गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, संवर जाएगी ज़िंदगानी।
*गुरु ग्रंथ साहिब की बाणी पढ़िए, रुक जाएगी तुग़यानी**।*
मिट जाए जो 'मैं-मेरी' तो, 'वह' ही एक रहेगा,
नूर में मिलते 'अरशी', बन जाओगे नूरानी।

*काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। **सैलाब, बाढ़।

-स. निरवैर सिंघ अरशी, बिल्डिंग यूको बैंक, नई आबादी, श्री अनंदपुर साहिब-१४०११८, फोन : ९८८८६-३६४१३

सिक्ख धर्म का स्वर्णिम सिद्धांत : मीरी-पीरी

*-डॉ. सत्येंद्रपाल सिंघ**

श्री गुरु नानक साहिब ने मानवता को राह दिखाने के लिए सबसे पहले धर्म के वास्तविक स्वरूप को मुखर किया जो कर्मकांडों और भ्रामक अवधारणाओं के भंवर में उलझकर अपनी उपादेयता खो बैठा था और मानव शोषण का सबसे बड़ा स्रोत बन गया था। गुरु साहिब ने परमात्मा को धर्म के केंद्र में रखते हुए उसे संसार का एकमात्र सच कहा और शेष जो कुछ दृष्टिमान था उसे भ्रम और नाशवान बताया। उन्होंने कहा-- *"साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ॥"* अर्थात् "सच स्वरूप परमात्मा को सच के मार्ग पर चलकर ही समझा और पाया जा सकता है।" गुरु साहिबान ने परमात्मा को समझने और परमात्मा को पाने, इन दोनों लक्ष्यों को एक साथ आगे बढ़ाया। परमात्मा को समझना सच्चा ज्ञान था और उसे पाना सच्चा कर्म। सिक्ख धर्म इन दोनों स्तंभों के संतुलन से उभरा। यह सिक्ख धर्म की अनूठी विशेषता थी जिसने इसे संसार के अन्य धर्मों से भिन्न और विशिष्ट बनाया। अधिकांश धर्मों की पहचान उनके क्लिष्ट, दुरूह, भारी भरकम सिद्धांत और अभिजात्यवर्गीय भाषा में लिखे गये विशाल ग्रंथ थे, जिनके पठन-पाठन व व्याख्या पर एक खास वर्ग ने आधिपत्य जमा लिया था। धर्म के व्यवहारिक पक्ष का प्रतिनिधित्व ऐसे कर्मकांड कर रहे थे, जिन्हें संपूर्ण करने की योग्यता भी एक खास वर्ग के लिए आरक्षित थी। धर्म का आम लोगों से और आम लोगों के हितों से कोई सीधा सम्बंध नहीं रह गया था। धर्म जगत में ईश्वर को अलभ्य बना दिया गया था और ईश्वर से सम्पर्क का दावा करने वालों का वर्चस्व था। वे जैसा बताते लोग ईश्वर को वैसा ही जानते। वे जो विधियां बताते लोग उन्हें ही धर्म की विधियां मानते थे। श्री गुरु नानक साहिब ने इस वर्चस्व को तोड़ते हुए कहा : *"सभना जीआ का इकु दाता . . . ॥"* अज्ञानता व भ्रम की गहरी नींद में सोये मनुष्य के लिए यह विचार झिंझोड़ कर जगा देने वाला था। गुरु साहिब ने कहा कि शक्ति और सामर्थ्य एक ही केंद्र परमात्मा में निहित हैं। दाता एक परमात्मा है अन्य सभी याचक हैं। परमात्मा के सच्चे स्वरूप को जानने वालों और उसके गुणों के अनुकूल आचरण करने वालों को धर्म-पालक कहा गया-- *"जिनि सेविआ तिन पाइआ मानु ॥"* श्री गुरु नानक साहिब ने परमात्मा का जो स्वरूप संसार के सामने रखा वह मनुष्य के जीवन को संपूर्ण रूप में प्रभावित, नियमित करने वाला था। मनुष्य का हर कार्य परमात्मा के साथ उसके सम्बंध को स्पष्ट करने वाला था-- *"करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥"* मनुष्य के कर्मों का जो वर्गीकरण चला आ रहा था, गुरु साहिब ने उसे नकार दिया। कर्म को धार्मिक, सामाजिक, राजसी, व्यापारिक, पारिवारिक, सांसारिक आदि श्रेणियों में बांटकर अपने अनाचार, असत्य का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास हर दृष्टि से अधर्म था। श्री गुरु नानक साहिब ने

**ई-१७१६, राजाजी पुरम, लखनऊ-२२६०१७, फोन: ९४१५९-६०५३३*

समूची व्यवस्था व मनुष्य के संपूर्ण आचरण को सच के साथ जोड़कर धर्म की एक व्यापक अवधारणा प्रतिपादित की। गुरसिक्खी की धर्म-यात्रा 'गिआन खंड', 'सरम खंड' और 'करम खंड' की यात्रा है जिसका संकल्प व लक्ष्य 'सच खंड' है, जहां परमात्मा का निवास है। मीरी-पीरी का सिद्धांत इसी यात्रा को विशेष रूप से रेखांकित करना था जिसे श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने दो कृपाणें धारण कर और श्री अकाल तख़्त साहिब की रचना कर प्रकट किया था।

धर्म का पराभव श्री गुरु नानक साहिब के काल से पूर्व ही दृष्टिगोचर हो रहा था। स्थितियां बद से बदतर होती गईं। अधर्म, अन्याय इतना शक्तिशाली हो गया कि श्री गुरु अरजन देव जी को लाहौर में बड़ी ही त्रासदायक परिस्थितियों में अपना बलिदान देना पड़ा था। अन्यायी राज-सत्ता के सामने धर्म की चमक फीकी पड़ती न दिखे और धर्म का अनुसरण करने वाले लोग विश्वास के साथ अपने पथ पर अडिग रहें, इसके लिए श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने गुरगद्दी पर आसीन होते समय दो कृपाणें धारण की, जिनमें से एक धर्म-सत्ता और दूसरी राज-सत्ता की प्रतीक थी। यह एक स्पष्ट संदेश था कि श्री गुरु अरजन देव जी की शहादत को धर्म की लाचारी के रूप में न देखा जाये। धर्म श्रेष्ठ तो है ही, अधर्म, अन्याय से बलवान भी है। धर्म बलवान और निडर बनाने वाला है।

अनाथ को नाथु सरणि समरथा सगल स्रिसटि को माई बापु ॥
भगति वछल भै भंजन सुआमी गुण गावत नानक आलाप ॥ (पन्ना ८२५)

परमात्मा की शरण समर्थ बनाती है, निर्बल नहीं। परमात्मा सारी सृष्टि का स्वामी है, इसलिए उसकी शरण भी दृढ़ता प्रदान करने वाली है। उसकी भक्ति से सारे भय दूर हो जाते हैं और भक्त पूरी निष्ठा व समर्पण से धर्म-कर्म में लीन रहता है। मीरी-पीरी की कृपाणें धारण कर श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने अपना संकल्प प्रकट कर दिया कि वे किसी भी दशा में धर्म के मार्ग से च्युत होने वाले नहीं हैं। इस संकल्प का यह भी संदेश था कि श्री गुरु अरजन देव जी की शहादत अधर्म की विजय नहीं है और श्री गुरु नानक साहिब द्वारा शुरू की गई धर्म की यात्रा 'सच खंड' की ओर बढ़ती रहेगी। यह यात्रा निर्विघ्न चलती रहे, मीरी-पीरी इसे सुनिश्चित करने का एक उपाय है जो श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने किया। ऐसा करना उनका धर्म था क्योंकि अनाचार बढ़ता ही जा रहा था।

लोभ लहरि सभु सुआनु हलकु है हलकिओ सभहि बिगारे ॥
मेरे ठाकुर कै दीबानि खबरि ह्योई गुरि गिआनु खड़गु लै मारे ॥ (पन्ना ९८३)

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब की मीरी-पीरी की कृपाणें वास्तव में ज्ञान-खड़ग थीं। मीरी की कृपाण में खड़ग की शक्ति थी जिस पर ज्ञान का पहरा था और पीरी की कृपाण ज्ञान की कृपाण थी जो खड़ग की तरह ही प्रभावी थी। उस ज्ञान का क्या अर्थ जो किसी निष्कर्ष तक न ले जा सके अथवा जो व्यवहारिक परिणाम सामने न रख सके। प्राचीन धर्म-ग्रंथ श्रेष्ठ ज्ञान से भरे पड़े थे किंतु वे समाज में, व्यक्ति के जीवन में अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ पा रहे थे। धर्म की चर्चा थी किंतु धर्म की कोई उपादेयता नहीं रह गई थी। जो कुछ था बस भविष्य के लिए था कि मृत्यु के बाद स्वर्ग मिलेगा अथवा पाप-पुण्य का फल मिलेगा। एक ऐसा

भविष्य जिसे किसी ने देखा नहीं था। धर्म के प्रति लोगों का विश्वास विचलित हो गया था और वे निराश, हताश थे। इसे ध्यान में रखते हुए ही श्री गुरु नानक साहिब ने सचेत किया कि महज चर्चा, प्रवचन का कोई लाभ नहीं है :

गली जोगु न होई ॥
एक द्रिसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ॥ (पन्ना ७३०)

यदि ज्ञान की दृष्टि धारण की है तो उसे व्यवहार में भी उतरना है। ज्ञान यदि न्याय, मानवीय सम्मान, प्रेम, दया, क्षमा, करुणा, संयम, नम्रता, सेवा की बात कहता है तो उस ज्ञान को जीवन में दिखना भी चाहिए अन्यथा परमात्मा से मेल के लक्ष्य को पाना संभव नहीं। ऐसा करना सरल नहीं था क्योंकि अधर्म और अन्याय की शक्तियों ने समाज की चेतना को पूरी तरह से दबाया हुआ था। उनका प्रतिरोध करना आसान नहीं था। श्री गुरु नानक साहिब ने जब संसार में सच की बात उठाई तो उनकी राह में भरपूर अवरोध खड़े कर दिए गए। उन्हें बाबर की कैद में भी जाना पड़ा था। समय के साथ ये अवरोध बड़े होते गये और जब अन्याय को अपने अस्तित्व के लिए चुनौती दिखने लगी तब उसके तेवर भी बदलने लगे तथा और अधिक क्रूर होने लगे। इस क्रूरता का सामना करने के लिए ही ज्ञान को खड़ग बनना पड़ा। मीरी-पीरी की कृपाणें वास्तव में समय की आवश्यकता के अनुरूप थीं। हम जिस काल (कलयुग) में जी रहे हैं इसे श्री गुरु नानक साहिब ने अंधकार का काल कहा है :

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ ॥
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ ॥
हउ भालि विकुंनी होई ॥
आधेरै राहु न कोई ॥
विचि हउमै करि दुखु रोई ॥
कहु नानक किनि बिधि गति होई ॥ (पन्ना १४५)

स्वयं श्री गुरु नानक साहिब के सामने यह गंभीर प्रश्न था कि अधर्म और अन्याय से कैसे पार पाया जा सके और कैसे मानवता का कल्याण सुनिश्चित किया जा सके। जिनके पास सांसारिक शक्ति थी वे निर्दयी हो चुके थे और धर्म लुप्त हो गया था जैसे कोई पक्षी पंख फैला कर उड़ जाता है। अन्याय इस तरह अपने पैर पसार चुका था जैसे अमावस की काली अंधेरी रात हो। सच का चंद्रमा छिप गया था। मानवता का हाल बेहाल था जो व्याकुल होकर राह ढूंढ रही थी किंतु कोई राह नहीं मिल रही थी। धर्म से च्युत लोग दुख सह रहे थे। इन हालात से उबरना विकट था। इसके लिए कुछ विशेष करने की आवश्यकता थी।

मीरी-पीरी का सिद्धांत धर्म जगत में विशेष प्रयास था, न्याय की रक्षा और धर्म की स्थापना के लिए। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने जब मीरी और पीरी की कृपाणें धारण कीं तो लोगों को आश्चर्य हुआ था कि एक संत, फकीर का अस्त्रों-शस्त्रों से क्या सरोकार! यह आश्चर्य उनकी अज्ञानता के कारण था क्योंकि वे धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानते ही नहीं थे। उनके लिए धर्म कतिपय कर्मकांडों और बाहरी वेश तक ही सीमित था जिससे वे अपनी सांसारिक इच्छायें पूरी करने में लगे हुए थे। गुरु साहिबान की धर्म की राह ही अनूठी थी। उन्होंने न तो घर-परिवार का त्याग किया और न समाज-संसार छोड़ा। समाज में समाज के विकारों से उठकर कैसे जिया जा सकता है इसे गुरु साहिबान ने अपने व्यवहार से प्रत्यक्ष सिद्ध

किया था। उनका धर्म, ग्रंथों में कैद न होकर मनुष्य के रोज़ाना व्यवहार में जीवंत धर्म था। उनका धर्म मौन रहकर बैठे रहने वाला नहीं था, मनुष्य से सम्बंधित सारे प्रश्नों पर सचेत और सचेष्ट रहने वाला क्रियाशील धर्म था। गुरु साहिबान ने धर्म मनुष्य की सभी समस्याओं का निदान करने वाली शक्ति के रूप में सामने रखा। यदि समाज और राज की शक्तियां अन्याय कर रही थीं तो उन्हें देखते रहने के स्थान पर गुरु साहिबान डटकर विरोध में खड़े हुए और उस अन्याय को मिटाने के लिए आगे आये। धर्म को उन्होंने सभी शक्तियों से श्रेष्ठ माना :

हरि जीउ की है सभ सिरकारा ॥
एहु जमु किआ करे विचारा ॥ (पन्ना १०५४)

मीरी-पीरी का सिद्धांत 'हरि' की सरकार का निशान था। मीरी-पीरी की कृपाणें धारण करने वाले श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जब चले तो मात्र उनका चोला पकड़ने वाले, वर्षों से कैद होकर नरक समान ज़िंदगी व्यतीत करने वाले बावन राजा भी मुक्त हो गये। जब उनकी कृपाण उठी तो शेर के हमले से जहांगीर की जान बची। श्री अकाल तख़्त साहिब पर बैठे तो लोगों के झगड़े निपटाकर मेल-मिलाप कराये। युद्ध करने पड़े तो सारे युद्ध जीते और जीतने के बाद फौज को पूरी तरह से संयमित रखा। सिक्खों के साथ ही जंग के मैदान में मुगल सैनिकों के मृत पड़े शरीरों का भी विधिवत अंतिम संस्कार कराया। उनके सारे विचारों और कर्मों के केंद्र में धर्म था। गुरु साहिब ने सिक्खों को शक्ति को सदा धर्म की मर्यादा में बांधे रखने की शिक्षा दी। श्री गुरु हरिराय साहिब उनके पौत्र थे। वे जब बाल अवस्था में थे तो बाग में टहलते हुए अपने चोले से टकराकर एक फूल के टूट कर गिर जाने से वे दुखी हो गये। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने उन्हें समझाया कि चोला यदि बड़ा हो तो उसे संभालकर रखना चाहिए। यह 'ज्ञान खड़ग' को धारण करने की विधि थी जो गुरु साहिब ने बड़े ही सूक्त रूप में समझाई। चोला अर्थात् शक्ति को धारण करना भी आवश्यक था। फूलों के टूटने के भय से चोला पहनना छोड़ा नहीं जा सकता था बल्कि और अधिक सुचेत होकर चलने की आवश्यकता थी। शक्ति को धारण करना ही था क्योंकि तभी सत्य और न्याय की रक्षा हो सकती थी, मानवता का कल्याण हो सकता था। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब की मीरी की कृपाण अत्याचार से मुक्ति के लिए दी गई आकांक्षा की पूर्ति का माध्यम बनी। यह पूरी तरह से धर्म का एक अंग और ईश्वर के गुणों का प्रतिनिधित्व था। इसने सिक्खों को निर्भय और निश्चिंत बनाया और धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए परमात्मा में उनके विश्वास को दृढ़ किया। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब में सिक्खों को एक अजेय प्रतिपालक के दर्शन हुए और उनके आत्म-गौरव में वृद्धि हुई।

धर्म जीवंत हो, मुखर हो और सहायक, पालक हो, इसी में धर्म की महानता और परमात्मा के गुणों का ज्ञापन था। इसके लिए मीरी-पीरी से अधिक सार्थक कोई और विचार नहीं हो सकता था। श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने आगे चलकर खालसा पंथ की साजना की तो यह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब की उसी वैचारिक दृष्टि का विस्तार था। मीरी-पीरी के सिद्धांत को श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने अपने जीवन काल में ही व्यवहारत: सिद्ध करके दिखाया और सारी शंकाओं का निराकरण करते हुए श्री गुरु नानक साहिब के मिशन को आगे बढ़ाया, जिससे मीरी-पीरी के सिद्धांत की उत्कृष्टता स्थापित हुई।

मीरी-पीरी का सिद्धांत

*-डॉ. कुलदीप सिंघ**

मीरी एवं पीरी दोनों अरबी भाषा के शब्द हैं। 'मीर' अरबी के शब्द अमीर का लघु रूप है। अमीर का अर्थ है-- हकूमत करने वाला हाकिम, जरनैल या सेनापति। पीर का अर्थ है-- रूहानियत देने वाला महापुरुष, गुरु।

श्री गुरु नानक साहिब से लेकर श्री गुरु अरजन देव जी तक गुरगद्दी को सारे जगत में पीरी की गद्दी समझा जाता था। गुरगद्दी आध्यात्मिक स्तर पर समझी जाती थी तथा गुरु साहिबान का पीर के रूप में सम्मान किया जाता था।

अकबर १६०६ ई में दुनिया से परलोक गमन कर गया। जहांगीर को तख़्त पर बैठाने के लिए कट्टरवादी नक़शबंदी धड़े का समर्थन प्राप्त था। उस समय शेख़ अहमद सरहंदी इस धड़े से सम्बंध रखने वाला इस्लाम का मुख्य प्रचारक माना जाता था। वह श्री गुरु अरजन देव जी के लोगों द्वारा किए जाते सत्कार से ईर्ष्या करता था। श्री गुरु अरजन देव जी जैसे महापुरुष के होते हुए उसकी अपने मज़हब में दाल नहीं गलती थी, इसलिए वह गुरु साहिब के विरुद्ध प्रचार करता कि मुगल राज्य द्वारा उसको गुरमति का प्रचार करने की छूट दी हुई है। जहांगीर ने इस धड़े को खुश करने हेतु बिना किसी पड़ताल के श्री गुरु अरजन देव जी को शहीद करने का हुक्म दे दिया। 'तुजके-जहांगीरी' में उसने इस बात को खुद स्वीकार किया है। यह एक राजनीतिक साज़िश थी जिसको परदे में रखा गया। जहांगीर को जब गुरु-घर में से फैल रही आध्यात्मिकता का प्रकाश मिला तो उसको अपनी भूल का एहसास हुआ। उसने गुरमति का प्रचार रोकने वाली सारी कार्यवाइयों को बंद कर दिया तथा इसको प्रफुल्लित होने की छूट दे दी।

पंचम पातशाह की शहीदी गुरमति के इतिहास में पहला महान साका था जो राज्य द्वारा निरोल राजनीति के आधार पर की गयी थी। उस समय सिक्ख धर्म लोकप्रियता के शिखर को छू रहा था। समय की राज-सत्ता सिक्ख धर्म की प्रभु-सत्ता को सीमित रहने देना चाहती थी। यह ताकत कभी भी राज-सत्ता से टकराने का कारण बन सकती थी। इस्लाम राज्य अपने धर्म की नींव भारत में मज़बूत करना चाहता था। इस्लाम के लोग किसी अन्य धर्म को इस्लाम से ऊंचा नहीं देख सकते थे अथवा उस धर्म का इस्लाम से ज्यादा सत्कार हो यह सहन नहीं कर सकते थे। श्री गुरु अरजन देव जी को यासा कानून के अधीन धार्मिक तथा राजनीतिक दोषी ठहराकर शहीद करने के लिए घोर यातनाएं दी गई थीं। यह दोष धार्मिक या राजनीतिक रूप से ठीक नहीं था। श्री गुरु अरजन देव जी की शख़्सियत सच-आचार पर निर्मित थी। उनकी शख़्सियत में *"ना को बैरी नही बिगाना"* की प्रवृत्ति थी। हर कोई उनका मुरीद बन जाता था। ऐसी शख़्सियत की शहादत ने गुरमति पंथ के पथिकों

***५४, अजीत नगर, श्री अमृतसर- १४३००६*

को झिंझोड़ दिया। सिक्खी अस्तित्व को स्थिर रखने तथा इसमें से गम, गुस्से तथा डर की भावना निकालने के लिए सोच आरंभ हो गई। धर्म की रक्षा के लिए शक्ति का होना आवश्यक समझा जाने लगा। भाई वीर सिंघ छठम् गुरु जी के जीवन-वृत्तांत में लिखते हैं:-

"अब दसतारबंदी होनी थी। मसंदों ने साथ ही सेली टोपी आगे लाकर आगे रखी। गुरु जी ने भाई (बाबा) बुड्ढा जी की ओर देखकर फरमान किया कि अब सेली टोपी का समय नहीं, अब समय शस्त्रों का आ गया है। तब पहले दसतारबंदी हुई। फिर दसतार पर कलगी लगाई तथा फिर . . . दो तेगें पहनाई गईं। इसलिए आप जी को खड़गधारी तथा मीरी-पीरी के मालिक के रुतबे से याद किया जाता है। अभिप्राय शायद यह था कि पीरी की कृपाण देखकर ज़ालिम समझ जाए कि अब लोग हमसे दबने नहीं लगे।"[१]

भाई वीर सिंघ की उपरोक्त धारणा से स्पष्ट है कि मीरी-पीरी की घटना कोई आकस्मिक नहीं हुई थी बल्कि यह योजना अधीन ही थी। धर्म चाहे कितने गुणों अथवा विचारों से विभूषित हो जब तक उसकी रक्षार्थ मज़बूत हाथ नहीं, उतनी देर तक वह सुरक्षित नहीं।

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब की उम्र चाहे ग्यारह वर्ष की थी किंतु उनमें ज्योति श्री गुरु नानक देव जी की ही थी, जिसकी अवस्था आदि-जुगादि थी, इसलिए जो-जो निर्णय या कार्य उन्होंने किए उनकी बुनियाद भी आदि-जुगादि थी। अब समय आ गया था कि भक्ति की रक्षा हेतु शक्ति का प्रयोग किया जाए। शक्ति का प्रयोग समय की आवश्यकता भी थी।

मीरी-पीरी सिक्ख धर्म में साथ-साथ चलते हैं। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने १६०६ ई में गुरुतागद्दी पर विराजमान होने के समय दोनों शक्तियों का सुमेल कर दिया। आगे का एलाननामा श्री अकाल तख़्त साहिब की सृजना तथा घुड़सवार सेना को जत्थेबंद करना था। श्री अकाल तख़्त साहिब से धार्मिक तथा राजसी फैसले प्राप्त करने में सिक्खों का विश्वास कायम करना था। यह एलाननामा स्वतंत्रता का एलाननामा था। सतिगुरु जी झूठे मुगल बादशाह के अमीर नहीं थे। वे अकाल पुरख के सजाए सच्चे मीर थे। मीरों वाली वेशभूषा इसलिए धारण की थी कि श्री गुरु अरजन देव जी की हुई शहीदी के कारण, सिक्ख संगत के हुए भयभीत मन को भय की दशा में से निकाला जाए। वहीं जहांगीर बादशाह, जिसको श्री गुरु अरजन देव जी की शख़्सियत भाती नहीं थी, अब श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को पीर तथा मीर के रूप में विचरण करते हुए देखकर उनके साथ मित्रता चाहता था।

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब का यह फैसला था कि गुरु के सिक्ख सरकार की धक्केशाही के आगे नहीं झुक सकते तथा न ही गुरु-घर ने किसी से भय खाया। अध्यात्म पीर तथा दुनियावी मीर की किसी समय भी टक्कर की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता था। पीर में किसी भी प्रकार के अहंकार का प्रवेश नहीं हो सकता। वह सदैव आत्मवादी रहता है। दोनों की सीमाएं भिन्न-भिन्न हैं। गुरु जी सच्चे मीर बनकर विचरे। दुनियावी मीर अहंकार तथा राज्य के नशे में सब कुछ भूल जाता है। राज्य का नशा उसको नेकी तथा बदी की पहचान नहीं रहने देता।

मीरी तथा पीरी का संगम धर्म तथा राजनीति-- दो ताकतों को एक जगह इकट्ठा

करना है। धर्म की रक्षा हेतु यह आवश्यक बन गया था कि मीरी को पीरी में सम्मिलित किया जाए। भाई मनी सिंघ जी लिखते हैं-- "भाई संसारू जी तथा भाई जैता जी ने गुरु-घर के कई दोखियों-- नूरदीन, कुलीखान तथा बीरबल आदि द्वारा बार-बार डरावे देने पर गुरु जी से कहा, यदि हुक्म करो तो हम भी हथियार पकड़कर इनका मुकाबला करें तथा प्रतिदिन का झगड़ा ही खत्म कर दें। श्री गुरु अरजन देव जी ने फरमान किया, असां जो सशतर पकड़ने हैनि, समां कलजुग दा वरतना है, सशतर दी विदिआ करके मीर दी मीरी खिच लैणी है तथा शबद दी प्रीत समझ कर पीर दी पीरी खिच लैणी है।"[२]

सिक्ख संगत गुरु-घर के दोखियों द्वारा गुरु-घर पर बार-बार हमले करने के कारण यह अनुभव कर रही थी कि अब शक्ति का प्रयोग किए बिना धर्म की रक्षा करना कठिन है। उपरोक्त हवाले से यह स्पष्ट संकेत था कि श्री गुरु अरजन देव जी महाराज द्वारा श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को स्पष्ट संकेत हथियार पकड़ने के लिए किया गया था। इस नई पालिसी की उन्होंने खुद रूप-रेखा दी थी। उन्होंने देख लिया था कि जुल्म पर शक्ति से ही अंकुश लगाया जा सकता है। स. खुशवंत सिंघ के अनुसार, "श्री गुरु अरजन देव जी ने ज्योति-जोति समाने के समय किसी सिक्ख के हाथ संदेश भेजकर श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को हिदायत की कि वे पूरी तरह से हथियारबंद होकर गद्दी पर बैठें तथा एक ताकतवर सेना रखें।"[३]

भाई संतोख सिंघ लिखते हैं :

--धरे तेज सतिगुरू बच कहे।
हम ने इस हित जुग अस गहे।
इक तै लैं मीरन की मीरी।
दूसर ते पीरनि की पीरी।
मीरी पीरी दोनहु धरैं।
बचहि सरनि नतु जग परहरें।
सुनि सतिगुर के वाक अडोले।
धरि सरधा लहि अनंद अडोले।

(श्री गुर प्रताप सूरज)

--अब समा तेग का गय आउ।
सो बाह जी मुह दहुं लिआउ।
गुर करब सु तों सिध परी दोइ।
इह मीरी पीरी केर होए।[४]

यह जुल्म करने वालों को ललकार थी कि अब धर्म के धारक निर्बल नहीं हैं। वे जुल्म के मुंह को जत-सत तथा सच की तेग से मोड़ने के समर्थ हैं। अब धर्म को जुल्म द्वारा कुचला नहीं जा सकेगा।

गुरगद्दी पर विराजमान होते ही श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब द्वारा सिक्खों को हुकमनामे लिखवाकर भिजवाए गए कि जो कोई सिक्ख अच्छा घोड़ा तथा अच्छा शस्त्र गुरु-घर भेटा करेगा, उस पर गुरु जी बहुत खुश होंगे।[५]

गुरु साहिब के हुकमनामे सुनकर दूर-पास, देश-विदेश से संगत यथायोग्य शस्त्र, घोड़े तथा धन लेकर आना शुरू हो गई। गुरु साहिब बड़े-बड़े बहादुर लोगों को बहुत सम्मान देकर अपने पास रखने लगे। आप जी ने शिकार खेलना प्रारंभ कर दिया। सिक्खों को शस्त्र-विद्या दी जाने लगी। जल्द ही एक बहुत बड़ी सेना खड़ी हो गई।[६]

गुरु साहिब हर रोज़ श्री अकाल तख़्त साहिब पर संगत का दरबार लगाते जिसमें ढाडी भाई अब्दुल्ला तथा भाई नत्था द्वारा वीर-रस से भरपूर वारें गायन की जातीं। इन वारों को सुनकर सिक्खों में बहादुरी भर जाती। रोज़

दंगल होते। जैसे-जैसे शस्त्रधारी सेना की संख्या बढ़ती गई, गुरु जी ने इस सेना को एक-एक सौ के चार हिस्सों में बांट दिया। इनके चार मुखिया नियत किए गए। ये मुखिया थे-- भाई बिधी चंद, पैंदे खां, भाई पिराणा जी तथा भाई जेठा जी।[७] कनिंघम के अनुसार गुरु जी ५२ शूरवीर सिक्खों को अंगरक्षक के रूप में अपने पास रखते। गुरु जी के पास ४०० घोड़े, ३०० शिक्षित घुड़सवार तथा ६० बंदूकची थे।[८]

श्री अकाल तख़्त साहिब पर बैठकर राजनीतिक झगड़े निपटाए जाते। स. खुशवंत सिंघ के अनुसार गुरु साहिब दूसरे राजाओं के प्रतिनिधियों को भी श्री अकाल तख़्त साहिब पर सजे दरबार में सम्मानित करने लगे।[९] इस तरह मीरी पूरी तरह से गुरु-घर में आ गई। पीरी तथा मीरी की बख़्शिशें संगत लेने लगी।

डॉ. हरी राम गुप्ता के अनुसार, "अब सिक्खों ने दिल्ली की ओर, सरकार के केंद्र के रूप में देखना बंद कर दिया। वे श्री अमृतसर को केंद्र तथा श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को मुगल शहंशाह के मुकाबले सच्चा पातशाह समझते थे।"[१०] ए. सी. बैनर्जी लिखते हैं, "गुरु साहिब ने नगाड़ा बजाने की रस्म आरंभ की जो मुगल सेना में प्रभुता की निशानी समझी जाती थी।"[११] गुरु साहिब का मीरी-पीरी वाला रूप देखकर फकीरों को भी भ्रम पड़ना स्वाभाविक था। गुजरात का एक मुसलमान दरवेश गुरु जी की मीरी तथा पीरी एक साथ देखकर चकित रह गया। उसने आशंका प्रकट करते हुए पूछा :

पुत्तर की वैराग की? दौलत की तिआग की?
औरत की ते पीरी की? हिंदू की ते फकीरी की?

गुरु जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया :

पुत्तर निशान है। दौलत गुज़रान है।
औरत ईमान है। फकीर न हिंदू है न मुसलमान है।[१२]

भाई गुरदास जी इस आशंका की निवृत्ति इस प्रकार प्रकट करते हैं :

--धरमसाल कर बहीदा इक थाउं न टिकै टिकाइआ। . . .
सेवक पास न रखीअनि दोखी दुसट आगू मुहि लाइआ। (वार २६:२४)
--खेती वाड़ि सु ढिंगरी किकर आस पास जिउ बागै। . . .
जिउ पारसु विचि पथरां मणि मसतकि जिउ कालै नागै। (वार २६:२५)

भाई गुरदास जी उपरोक्त वार में कई दृष्टांत देकर लिखते हैं कि सिक्खी की रक्षा हेतु तेग धारण करने की ज़रूरत है ताकि कोई दुश्मन सहज ही सिक्खों पर हाथ न डाल सके। धर्म की रक्षा तेग से ही हो सकती है।

डॉ. हरी राम गुप्ता, प्रो. साहिब सिंघ तथा मैकालिफ़ का विचार है कि श्री हरिमंदर साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब दो संस्थाएं हैं। पहली में कीर्तन होता है और दूसरी में हर प्रकार के मसले विचारे जाते हैं। श्री हरिमंदर साहिब में श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब एक संत की तरह विचरण करते, बाणी सुनते तथा उसकी व्याख्या करते थे। श्री गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश तथा शबद-कीर्तन होता था। श्री अकाल तख़्त साहिब पर गुरु साहिब एक मीर के रूप में बैठते थे। दरबार लगाते तथा सिक्खों के राजनीतिक एवं अन्य सांसारिक मसले निपटाते।[१३]

गुरु जी ने मीरी-पीरी को सांझा कर दिया। दोनों ताकतें स्वतंत्र होती हुई भी हर क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ सहयोगी थीं। ज्ञानी गिआन सिंघ के अनुसार, गुरु जी प्रभात होते ही वस्त्र, जिगा, कलगी सजाकर सिक्ख-सेवकों सहित पहले आकर दर्शनी दरवाज़े के आगे

माथा टेकते थे फिर श्री हरिमंदर साहिब में श्री गुरु ग्रंथ साहिब को वंदना करके छोटी एवं बड़ी परिक्रमा करके अकाल बुंगे में सिंहासन पर आ बैठते और सभा लग जाती। भाई सत्ता जी तथा भाई बलवंड जी से आसा की वार तथा अन्य धर्म-युद्ध के साके एवं वारें सुनते। फिर सिक्खों को सिक्ख धर्म का उपदेश तथा गुरु-मंत्र देकर निहाल करते।[१४]

ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि छठम् पातशाह द्वारा मीरी-पीरी का सिद्धांत लागू करना उनसे पहले चली रही प्रथाओं में ही बढ़ोतरी थी। यह धर्म की रक्षा हेतु एक इंकलाबी कदम था। चल रही स्थिति को तथा घटित हुई घटनाओं को सम्मुख रखकर अनुभव किया गया था कि धर्म की रक्षा तेग उठाए बिना संभव नहीं।

सिक्खी का आधार स्वाभिमान में से उपजा है। भारतीय धार्मिक आगू फोकट कर्मों में लग गए थे। यह एक पीर की मीर को पुकार थी; सोए हुए भारतीयों को निद्रा से जगाकर अपना घर संभालने के लिए एक उत्तेजना थी। यह सात्विक अगुआई थी। श्री गुरु अंगद साहिब जैसे पीर ने ही हुमायूं से हार खाकर आए मीर को सच की बात सुनाई थी-- जो तलवार शेरशाह सूरी के आगे झुक गयी थी, आज फकीर (पीर) के विरुद्ध क्यों? पीर ने मीर को मार्ग दिखा दिया। उसको भूल की समझ हो गयी कि तेग तो मज़लूमों की रक्षा हेतु होती है, फकीरों को डराने या धमकाने के लिए नहीं।

ज्ञानी लाल सिंघ तथा डॉ. जसबीर सिंघ आहलूवालिया का मत है कि धर्म के साथ शक्ति के सुमेल की पूर्ति चाहे श्री गुरु नानक साहिब के ज्योति-जोत समाने से सड़सठ वर्ष के बाद जाकर हुई परंतु धर्म का ऐसा संकल्प जिसमें दृष्टिमान संसार में अमल को आवश्यक स्थान दिया गया, शुरू से ही श्री गुरु नानक साहिब की बाणी तथा परिवार में मौजूद है।[१५] गुरु जी ने घर-घर जाकर भारत के लोगों की मर चुकी ज़मीर को पुन: जीवित किया, उनको जीवन का वास्तविक लक्ष्य बताया। श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब द्वारा धार्मिक जीवन में शक्ति का सुमेल करके मीरी-पीरी को इकट्ठा करने का यही संकेत था कि शक्ति को इसमें सदैव के लिए शामिल करना है। इसमें सेवा व सिमरन पर भी बल दिया गया ताकि मीरी पीरी पर भारी न पड़ सके। यह सुमेल बढ़ता ही गया तथा खालसे के जन्म से सम्पूर्ण हुआ। यह एक दिन की या किसी आकस्मिक घटित हुई घटना की देन नहीं थी बल्कि यह चल रही प्रथा तथा योजना के अधीन ही था। यह प्रभु-सत्ता को बरक़रार रखने की योजना थी जिसको सम्पूर्ण किया गया।

डॉ. जसबीर सिंघ आहलूवालिया लिखते हैं कि सिक्ख मत ने एक नए मनुष्य (गुरमुख), एक नये समाज (पंथ) तथा एक नये राष्ट्र (खालसा पंथ) का तसव्वुर पेश किया है।[१६] यह अपने निशाने पर पूरा उतरा तथा यह तीनों ही गुणों का मालिक बन गया।

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने निरोल धार्मिक जीवन में शक्ति का सुमेल कर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का प्रयोग सामूहिक रूप में किया ताकि मीरी-पीरी स्थिर रहे। मीरी तथा पीरी को पंथक तथा सामूहिक जीवन में शक्ति को धारण करना है तथा आध्यात्मिक जीवन को सम्पूर्णता से निभाना है।

भक्ति एवं शक्ति दो सिरे नहीं। भक्ति ने शक्ति को उत्पन्न करना है। श्री गुरु अरजन देव जी ने इसी राष्ट्र की नींव हलेमी राज्य

के रूप में रखी थी। श्री गुरु ग्रंथ साहिब तथा खालसा पंथ एक दूसरे से अलग नहीं। ज्ञानी गिआन सिंघ लिखते हैं :

पंथ जे रहा तो तेरा ग्रंथ वी रहेगा नाथा
पंथ ना रहा तो तेरा ग्रंथ कौण मानेंगे।
(पंथ प्रकाश)

सरबत्त खालसा अगर कोई फैसला करता है और यदि उस समय श्री गुरु ग्रंथ साहिब प्रकाशमान नहीं तो सरबत्त खालसे का ऐसा फैसला गुरमता नहीं बन सकता। गुरु की हाज़िरी में सारे फैसले किए जाते हैं तथा वही खालसा पंथ के फैसले होते हैं।

सिक्ख राज्य में ऐसी एक उदाहरण भी नहीं जिसमें सिक्ख धर्म के नियमों के तहत किसी दूसरी कौम के व्यक्ति को सज़ा दी गई हो। सिक्ख राष्ट्र में राष्ट्र के प्रति वफ़ादारी रखते हर नागरिक का सत्कार किया जाता है। श्री अकाल तख़्त साहिब सिक्खी की सर्वोच्च अथार्टी है।

सिक्ख धर्म में मीरी तथा पीरी दोनों ताकतें समतुल्य हैं। मीरी तथा पीरी सिक्खी की प्रभु-सत्ता के चिन्ह हैं; दो निशान साहिब हैं। ये दोनों चिन्ह सिक्खी को सच्ची उत्तेजना देते हैं। मीरी-पीरी का संकल्प सिक्खी को सदैव चढ़दी कला में ले जाने के लिए प्रेरणास्रोत है। सिक्खी जुल्म के आगे नहीं झुकेगी, न ही किसी और के साथ बेइन्साफी होने देगी। इतिहास के पन्ने इसकी गवाही भरते हैं कि मीरी-पीरी ने खालसा पंथ को परोपकार की खातिर शहीदी प्राप्त करने की एक प्रथा चला दी जो आज तक जारी है। दशमेश पिता का फरमान आज भी गुंजायमान है :

जब लग खालसा रहे निआरा।
तब लग तेज दीउ मै सारा।
जब इह गहे बिपरन की रीत।
मै न करों इन की परतीत।

संदर्भ सूची :

१) श्री अशट गुरू चमतकार, भाग तीजा, पृष्ठ १२-१३
२) सिक्खां दी भगतमाला, संपादित धरम चंद आतिश, पृष्ठ २२८ (लाहौर बुक शॉप), १९७९
३) हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस, जिल्द पहली, पृष्ठ २७-२८, ऑक्सफोर्ड सोनी प्रेस, १९७८
४) ज्ञानी गिआन सिंघ, तवारीख गुरू खालसा, भाग पहला पृष्ठ ४१५
५) मैकालिफ़ सिक्ख रिलीजन, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३
६) तवारीख गुरू खालसा, पृष्ठ ४१६, गुर बिलास कवित २९, कवि सोहण
७) तवारीख गुरू खालसा, पृष्ठ २९९
८) कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस, पृष्ठ ५१
९) ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस, जिल्द पहली, पृष्ठ ६३-६४
१०) ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ सिक्ख गुरूज़, पृष्ठ २६४
११) गुरू नानक देव गुरू गोबिंद सिंघ, पृष्ठ २००
१२) तवारीख गुरू खालसा, भाग पहला, पृष्ठ ४३९, डॉ. गंडा सिंघ, प्रो तेजा सिंघ, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस, पृष्ठ ४२
१३) हिस्ट्री ऑफ दी सिक्ख गुरूज, पृष्ठ २६३, जीवन बिरतांत श्री गुरू हरिगोबिंद साहिब, पृष्ठ १७, मैकालिफ़, जिल्द ४, पृष्ठ ५
१४) तवारीख गुरू खालसा, भाग पहला, पृष्ठ ४१६
१५) मीरी पीरी दा सिधांत, पृष्ठ ११
१६) सिक्ख फलसफे दी भूमिका, पृष्ठ ६७

भाई मनी सिंघ जी शहीद

*-स. गुरदीप सिंघ**

सिक्ख इतिहास को शहीदों का इतिहास कहा जाता है। भाई मनी सिंघ जी उन खास शख़्सियतों में से एक हैं, जिन्होंने गुरु साहिबान की शरण में रहकर जीवन-जाच सीखी और गुरु साहिबान के बाद अपने कुशल नेतृत्व से सिक्खों का मार्गदर्शन किया। इस महान योद्धा, ज्ञानी, हठी का नाम सिक्ख इतिहास के पृष्ठों में सुनहरी अक्षरों में अंकित है। भाई मनी सिंघ जी शहीद के बारे में 'प्राचीन पंथ प्रकाश' कर्त्ता भाई रतन सिंघ (भंगू) में इस प्रकार वर्णित है :

मनी सिंघ थे संत सुजान,
जती सती और धयानी मान।
हठी तपी औ मत को पूरो,
सहनशील और दिल को सूरो।
करमी धरमी भगति गिआनी,
सतिगुर बचन पर मति ठानी।

भाई मनी सिंघ जी का जन्म १० मार्च, १६४४ ई को मुलतान (पाकिस्तान) के गांव अलीपुर में भाई माई दास के घर माता मधरी बाई की कोख से हुआ था। वंश-परंपरा के अनुसार भाई मनी सिंघ जी के परिवार का सम्बंध छठम् पातशाह साहिब श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब से जुड़ता है। भाई साहिब के दादा भाई बल्लू राव छठम् पातशाह के अनन्य सिक्ख एवं सिपहसलार थे। भाई बल्लू राव पिपली साहिब, श्री अमृतसर की जंग में शहीद हुए थे। भाई बल्लू राव के १२ पुत्रों में से एक थे भाई माई दास। भाई माई दास के भी १२ पुत्र थे। इनमें भाई मनी सिंघ जी एक थे। इनमें से केवल एक को छोड़कर शेष ग्यारह पुत्रों ने शहीदी प्राप्त की।

भाई मनी सिंघ जी के बचपन का नाम 'मनी राम' था। आपको प्यार से 'मनीआ' कहकर बुलाया जाता था। भाई मनी सिंघ जी जब १३ वर्ष के हुए तो भाई माई दास आपको लेकर सप्तम पातशाह श्री गुरु हरिराय साहिब के दरबार में कीरतपुर साहिब आए। गुरु जी भाई मनी सिंघ जी को देखकर प्रसन्न हुए और *"मनीआ इह गुनीआ होवेगा बीच जग सारे"* कहकर उन्हें गुणवान होने का आशीर्वाद दिया। भाई मनी सिंघ जी गुरु-दरबार में रहकर सेवा आदि के कार्य करते हुए जीवन सफल करने में लग गए। इन्हीं दिनों (१५ वर्ष की आयु में) भाई मनी सिंघ जी का विवाह खैरपुर के भाई लक्खी शाह की पुत्री बीबी सीतो के साथ हो गया। (भाई लक्खी शाह वही थे, जिन्होंने श्री गुरु तेग बहादर साहिब के धड़ का अंतिम संस्कार अपने घर को आग लगाकर किया था।)

श्री गुरु हरिराय साहिब के ज्योति-जोत समा जाने के बाद भाई मनी सिंघ जी श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब की शरण में आ गए। श्री गुरु हरिक्रिशन साहिब के दिल्ली में अकाल ज्योति में विलीन हो जाने के उपरांत आप 'बकाला' गांव में श्री गुरु तेग बहादर साहिब की सेवा में आ गए। सन् १६७५ में श्री गुरु तेग बहादर साहिब जब औरंगज़ेब के बुलावे पर दिल्ली गए तो भाई मनी सिंघ जी को श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के पास रुकने का हुक्म मिला। भाई मनी सिंघ जी के बड़े भ्राता भाई दिआला जी गुरु जी के साथ दिल्ली गए। भाई दिआला जी को खौलते हुए पानी की देग में बैठाकर शहीद कर दिया गया

**३०२, किदवाई नगर, लुधियाना-१४१००८; फोन : ९८८८१२६६९०*

तथा गुरु जी को चांदनी चौक में शहीद कर दिया गया। श्री गुरु तेग बहादर साहिब की शहादत के बाद भाई मनी सिंघ जी श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी की सेवा में आ गए। भाई मनी सिंघ जी पाउंटा साहिब में श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के साथ रहे। आप गुरु जी के साथ देहरादून भी गए। यहां जब गुरबख़श नाम के अहंकारी साधु ने श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के प्रति अशुभ वचन बोले तो भाई साहिब ने अपने खंडे से उसका सिर उड़ा दिया। भाई मनी सिंघ जी ने श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के साथ प्रत्येक युद्ध में उत्साह से भाग लिया। भंगाणी के युद्ध में आपने विशेष जौहर दिखाए। भाई मनी सिंघ जी की अद्वितीय सेवा से प्रसन्न होकर श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने आपको गुरु-दरबार का दीवान नियुक्त किया।

भाई मनी सिंघ जी तेग के साथ-साथ कलम के भी धनी थे। आपको लंगर आदि की सेवा से जब भी फुर्सत मिलती आप गुरबाणी का अभ्यास आरंभ कर देते। गुरमति एवं गुरबाणी को समझने के लिए आपने भाई गुरदास जी की वारों का गहन अध्ययन किया। अध्ययन-चिंतन की अधिक रुचि को देखते हुए गुरु जी ने आपको लंगर की सेवा से मुक्त करके धर्म-ग्रंथों के अध्ययन-विश्लेषण की सेवा सौंप दी। थोड़े समय में ही भाई मनी सिंघ जी संस्कृत एवं फारसी के उत्कृष्ट विद्वान बन गए। ज्ञानी गिआन सिंघ ने भाई मनी सिंघ जी की विद्वता को विशेष रूप से सराहा है और आपकी गणना गुरु जी के बावन दरबारी कवियों में की है :

कवि बवंजा थे गुरु पास।
उनमै गनना इनकी खास। *(पंथ प्रकाश)*

सन् १६९९ ई की वैसाखी वाले दिन जब श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने 'खालसे' की सृजना की तो भाई मनी सिंघ जी ने उसी दिन लगभग ५५ वर्ष की आयु में अमृत छका था।

श्री अनंदपुर साहिब के पहले युद्ध में पहाड़ी राजाओं ने हाथी को शराब पिला कर किले का दरवाज़ा तोड़ने के लिए भेजा था। उसका मुकाबला भाई मनी सिंघजी के सुपुत्रों-- भाई बचित्तर सिंघ तथ भाई उदे सिंघ ने किया था। जब श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी को श्री अनंदपुर साहिब का किला छोड़ना पड़ा तो भाई मनी सिंघ जी मुगलों के खतरों से बचते हुए गुरु जी के महिलों को सुरक्षित दिल्ली पहुंचाने में सफल हुए। श्री मुकतसर साहिब के युद्ध के उपरांत जब श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी साबो की तलवंडी (बठिंडा) पहुंचे तो भाई मनी सिंघ जी गुरु के महिलों तथा संगत को लेकर गुरु जी की सेवा में हाज़िर हुए। यहां पर श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने आपसे श्री गुरु ग्रंथ साहिब की बीड़ लिखवाई। इस बीड़ में श्री गुरु तेग बहादर साहिब की बाणी दर्ज करवाई जो सिक्ख पंथ में 'दमदमे वाली बीड़' के नाम से जानी जाती है।

इन्हीं दिनों श्री हरिमंदर साहिब, श्री अमृतसर का प्रबंध देखने वाले महंत सोढी का देहांत हो गया। उसके बाद उसका पुत्र निरंजन राय सबको एकजुट न रख सका। इसी वजह से श्री हरिमंदर साहिब का प्रबंध सुचारू रूप से चलाने वाला कोई न रहा। माता सुंदरी जी ने भाई मनी सिंघ जी को श्री हरिमंदर साहिब, श्री अमृतसर का ग्रंथी नियुक्त कर भेजा। भाई मनी सिंघ जी ने श्री अमृतसर आकर श्री हरिमंदर साहिब में सिक्ख मर्यादा को फिर से प्रचलित किया जो मीणे-मसंदों की गतिविधियों से खंडित हो चुकी थी।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर की शहादत के बाद खालसा पंथ 'बंदई खालसा' और 'तत्त खालसा' में विभाजित हो गया था। एक गुट बाबा बंदा सिंघ बहादुर को अपना नेता मानने लगा। अकाल बुंगे पर तत्त खालसा के जत्थेदार बाबा काहन सिंघ ने तथा झंडा बुंगा पर महंत सिंघ खेमकरण वाले ने कब्ज़ा कर लिया। सिक्खों में रोष उस समय

बढ़ गया जब महंत सिंघ रथों पर गदेले लगाकर श्री हरिमंदर साहिब तक आ गया। भाई मनी सिंघ जी ने सुझाव दिया कि नित्य-प्रति का झगड़ा मिटाने के लिए 'हरि की पौड़ी' पर पर्चियां डाली जाएं। भाई मनी सिंघ जी द्वारा दो पर्चियां लिखी गईं। एक पर्ची पर बंदई खालसा का जंगी नारा 'फ़तहि दर्शन' तथा दूसरी पर्ची पर तत्त खालसा का 'वाहिगुरु जी की फ़तहि' लिखकर हरि की पौड़ी में डालीं। निर्णय हो गया कि जिसकी पर्ची पहले तैर कर ऊपर आयेगी वही गुरुद्वारा प्रबंध का अधिकारी होगा। 'वाहिगुरु जी की फ़तहि' वाली पर्ची तैर आई। पंथ ने जैकारे छोड़े। इस तरह भाई मनी सिंघ जी की बुद्धिमता और सूझ-बूझ से यह झगड़ा शांतिपूर्वक हल हो गया।

समय की हकूमत के अनुसार सिक्खों को श्री हरिमंदर साहिब में कोई भी आयोजन करने के बदले मुगल बादशाह को जजिया देना पड़ता था। राजनीतिक तौर पर अव्यवस्थित रहने के कारण सिक्ख लंबे समय से श्री हरिमंदर साहिब में बंदी छोड़ दिवस (दीवाली) नहीं मना पाए थे। सन् १७३३ के बंदी छोड़ दिवस पर भाई मनी सिंघ जी ने सारे पंथ को इकट्ठा करने की सोची। ज़करिया ख़ान ने इस शर्त पर स्वीकृति दी कि ५००० रुपये कर के रूप में दिए जाएं। भाई मनी सिंघ जी ने स्वीकार कर लिया क्योंकि वे हर हालत में पंथ को इकट्ठा करना आवश्क समझते थे। ज़करिया ख़ान की चाल थी कि इकट्ठे हुए संपूर्ण खालसा पंथ को दीवाली वाली रात को घेरकर तोपों से उड़ा दिया जाएगा, इसके लिए दीवान लखपत राय को भारी फौज देकर रामतीर्थ भेजा जाए। फौज इकट्ठी होते देखकर और ख़बर मिलने पर भाई मनी सिंघ जी ने अपने सिंघों द्वारा आने वाली संगत को रास्ते में ही रोक देने का यत्न किया। दीवान न लग सका। भाई मनी सिंघ जी ने इस पर बड़ा रोष जताया और हकूमत के कर्मचारियों के पास साजिश का विरोध किया। ज़करिया खां ने उल्टा ५००० रुपए की मांग की। माना यह भी जाता है कि भाई मनी सिंघ जी ने कर की रकम आगामी वैसाखी पर्व पर जमा कर देने की बात कही, जिस पर ज़करिया ख़ान ने हामी भर दी। वैसाखी पर्व पर भी ज़करिया ख़ान की कुटिल चाल के अंदेशे के तहत संगत का इकट्ठ न हो सका, जिस कारण असमर्थतावश भाई मनी सिंघ जी ने कर अदा करने से मना कर दिया।

भाई मनी सिंघ जी को गिरफ्तार करके लाहौर दरबार में पेश किया गया। ज़करिया खां ने उन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिए कहा और जुर्माने की रकम अदा न करने की सूरत में बंद-बंद काटकर शहीद करने का आदेश दिया। भाई मनी सिंघ जी ने शहादत स्वीकार करते हुए कहा कि मैं यही जीवन नहीं कई जीवन सिक्खी पर से कुर्बान करने के लिए तैयार हूं। काजी ने बंद-बंद काटने का आदेश सुनाया। भाई मनी सिंघ जी को शाही किले के पास ले जाया गया। भाई मनी सिंघ जी ने बाणी पढ़ते हुए पूर्णत: चढ़दी कला में रहकर अपना बंद-बंद कटवाया। पहले उंगलियों के पोटे, फिर हथेली, फिर कलाई, फिर कुहनी और फिर बाजू। इस प्रकार सारे शरीर का एक-एक बंद काटकर १७३४ ई में शहीद कर दिया गया।

भाई मनी सिंघ जी का संपूर्ण जीवन अद्वितीय और अमूल्य विरासत है। भाई मनी सिंघ जी सिक्खी-सिदक को निभाते हुए शहीदी प्राप्त कर गए। उनकी अद्वितीय कुर्बानी सिक्ख पंथ के लिए हमेशा ही प्रकाश-स्तंभ का काम करती रहेगी। इस महान शहीद ने अपना समस्त जीवन धर्म के नाम लगाकर धर्म के चढ़दी कला वाले सिद्धांत को और भी अधिक सुदृढ़ किया। लाहौर किले के निकट जहां भाई मनी सिंघ जी को शहीद किया गया था वहां गुरुद्वारा शहीद गंज साहिब सुशोभित है। ❁

शहीद भाई तारू सिंघ जी का जीवन-प्रसंग

*-डॉ. कशमीर सिंघ 'नूर'**

विश्व का इतिहास साक्षी है कि सच्चाई, न्याय, धर्म, मानवता और मानव के सम्मान व स्वतंत्रता हेतु सिक्खों ने बहुत संघर्ष किया है; असंख्य कुर्बानियां दी हैं। १८वीं शती तो सिक्खों के लिए कड़ी परीक्षा की शती रही है। मुगल, दुर्रानी, ईरानी एवं अफगानी उस वक्त के पंजाब में स्वयं को मज़बूत करने में लगे हुए थे। इन सबके विरुद्ध सिक्ख जूझ रहे थे, संघर्ष कर रहे थे। वे देश को आज़ाद करवाने तथा सभी लोगों के लिए समानाधिकार प्राप्त करने हेतु कुर्बानियां दे रहे थे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर की शहादत के पश्चात् अनेक बार सिक्खों का कत्लेआम हुआ। उन्हें लाहौर लाकर घोर यातनाएं देकर इसलिए शहीद किया गया, क्योंकि वे सिक्ख थे। वे दस सिक्ख गुरु साहिबान द्वारा दिखाए गए हक, सच व न्याय के रास्ते पर चलने वाले थे। सच्चे सिक्ख कभी डगमगाते नहीं हैं और सच की राह पर चलना कभी छोड़ते भी नहीं हैं। ऐसे ही सच्चे व निर्भीक सिक्ख थे-- शहीद भाई तारू सिंघ जी। उनका केशों सहित खोपड़ी उतरवाने वाला शहीदी साका कौम के बच्चे-बच्चे की जुबान पर है।

भाई तारू सिंघ जी पंजाब के माझा क्षेत्र के गांव पूहला के रहने वाले थे। कृषि-कार्य करते थे तथा नाम-सिमरन कर शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे। आने-जाने वाले खालसा की सेवा करते, रात्रि-विश्राम हेतु जगह देते और खालसा के दर्शन कर अति प्रसन्न होते। जब पूरी सिक्ख कौम को ही 'कानून के विरुद्ध' घोषित कर दिया गया था तथा सरकारी तौर पर एलान कर दिया गया था कि किसी सिक्ख को ज़िंदा या मुर्दा लाने वाले को इनाम दिया जाएगा, तब गांवों में सिक्खों का निवास करना कठिन हो गया तथा एक-एक सिक्ख के सिर का मूल्य लगा दिया गया था। इस सरकारी (शाही) फ़रमान कि सिक्खों को शरण (पनाह) देने वाले को या रसद-पानी देने वाले को कड़ी सज़ा मिलेगी, से और अधिक मुश्किल पैदा हो गई थी। साधारण हमदर्द भी मदद करने से डरने लगे थे। इस सबके बावजूद भाई तारू सिंघ जी अपने गांव में ही बसते रहे और पूरा गांव उनका सम्मान करता था।

एक लालची खत्री (क्षत्रिय) भगत् निरंजनी था, जिसने लाहौर के सूबेदार ज़करिया ख़ान के पास जाकर शिकायत की कि पूहला नामक गांव में एक सिक्ख निवास करता है। उसके पास अन्य सभी सिक्ख, जो हकूमत के विरुद्ध बगावत कर चुके हैं, आकर रुकते हैं। तुरंत ज़करिया ख़ान ने आदेश दे दिया कि भाई तारू सिंघ जी को गिरफ्तार कर उसके सामने पेश किया जाए।

जब शाही फौज की गांव में पहुंचने की ख़बर मिली तब भाई तारू सिंघ जी के समर्थक लोग तथा उनके पास ठहरे कुछ सिंघ मुगल फौज का मुकाबला करने हेतु तैयार हो गए। भाई तारू सिंघ जी ने उन्हें समझाया कि मेरी

**बी-एक्स ९२५, मोहल्ला संतोखपुरा, होशियारपुर रोड, जलंधर-१४४००४, फोन : ९८७२२-५४९९०*

खातिर कई लोगों की जान खतरे में पड़ सकती है। भाई साहिब की हिदायत पर सभी पीछे हट गए और शाही फौज ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

लाहौर में लाकर भाई तारू सिंघ जी को ज़करिया ख़ान के सामने पेश किया गया। ज़करिया ख़ान ने पूछा, "क्या आप सिक्खों को अपने पास ठहरने के लिए जगह देते हो ?"

भाई तारू सिंघ जी ने निडरता के साथ कहा, "मैं केवल उन्हें आश्रय ही नहीं देता, अपितु यथाशक्ति उनकी सेवा भी करता हूं। सेवा करनी तो मैं अपना धर्म समझता हूं।"

"आज के बाद ऐसा न करने का विश्वास दिला सकते हो?" सूबेदार ने पूछा।

भाई तारू सिंघ जी ने कड़कती आवाज़ में कहा, "बिलकुल नहीं! मेरा अपना कुछ भी नहीं है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब मेरे गुरु का दिया हुआ है। इसे मैं गुरु के खालसा की सेवा में लगा देता हूं। खालसा की सेवा को छोड़ना तो मौत से भी ज्यादा बुरा होगा मेरे लिए।"

भाई साहिब का निर्भीकतापूर्ण उत्तर सुनकर ज़करिया ख़ान ने काज़ियों को बुलवा लिया और उनकी राय के अनुसार आदेश दिया कि भाई तारू सिंघ जी के केश काट दिए जाएं। इस आदेश का भाव यह था कि जिस सिक्खी पर वे गर्व करते हैं, उस सिक्खी से उन्हें पतित कर दिया जाए।

भाई तारू सिंघ जी ने अपने केश कटवाने से मना कर दिया। उन्होंने जवाब दिया कि भले ही उनका सिर कलम कर दिया जाए मगर वे अपने केशों को कत्ल होता नहीं देख सकते। यह जवाब सुनकर ज़करिया ख़ान ने क्रोध में आकर कहा कि "जिस खोपड़ी पर तुम्हारे केश उगे हैं मैं आदेश देता हूं जल्लाद को कि वो खुर्पी से उस खोपड़ी को ही उतार दे। न रहेगी खोपड़ी और न रहेंगे केश।"

जल्लाद ने खुर्पी लेकर भाई तारू सिंघ जी की खोपड़ी उतारनी शुरू कर दी। भाई जी अकाल पुरख में ध्यान लगाकर अडोल बैठे रहे। वातावरण शांत हो गया। जुल्म की इंतिहा हो रही थी। कुछ दिन भाई जी बिना खोपड़ी के घायल अवस्था में रहे। उनके तन पर और भी जुल्म किए गए। आखिर वे जुल्म के आगे बिना झुके शहादत प्राप्त कर गए।

लाहौर में दिल्ली गेट के बाहर भाई तारू सिंघ जी के शरीर का अंतिम संस्कार किया गया। यह जगह लाहौर रेलवे स्टेशन के अति निकट है और यहां 'शहीद गंज गुरुद्वारा' सुशोभित है।

शहीद भाई तारू सिंघ जी का जीवन प्रसंग प्रेरणा देता है कि केश गुरु की मोहर होते हैं। इनकी हिफाज़त जान से बढ़कर की जानी चाहिए। पतित सिक्खों की कोई पहचान नहीं होती। शहीद भाई तारू सिंघ जी के जीवन-प्रसंग के साथ-साथ अन्य सभी सिंघों, सिंघनियों, भुजंगियों के शहादत-भरे प्रसंगों को सिक्ख बच्चे-बच्चियों को पढ़ाना व सुनाना चाहिए। इससे वे सिक्खी-स्वरूप की देखभाल व संभाल हेतु प्रेरित होंगे। सिक्खी के लासानी और गौरवशाली इतिहास से हमें अपने बच्चों को अवगत कराना चाहिए। सिक्खी का पूरे विश्व में प्रचार करना चाहिए। प्रत्येक सिक्ख सचरित्रता, उच्च नैतिकता, ईमानदारी, न्याय, धर्म, उच्च आदर्श, परोपकार की भावना वाला बने, यही असल में मानव-जीवन का उद्देश्य है। ❁

श्री गुरु ग्रंथ साहिब में लोभ आधारित दिशा-निर्देश

-डॉ. परमजीत कौर*

आजकल अधिकांश मनुष्य धर्म की आड़ में धन-प्राप्ति के लिए दिन-रात हाथ-पैर मार रहे हैं परंतु ऐश्वर्य के असीमित साधनों को प्राप्त करके वे भी सुखी नहीं हैं, क्योंकि उनकी पिपासा समाप्त नहीं होती। ऐसे लोग तृष्णा की आग में जलता हुआ विकारग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं :

तिसना अगनि जलै संसारा ॥
लोभु अभिमानु बहुतु अहंकारा ॥
मरि मरि जनमै पति गवाए अपणी बिरथा जनमु गवावणिआ ॥ (पन्ना १२०)

विषयों के रस में लिप्त रहने से मन लोभग्रस्त हो जाता है तथा मनुष्य परमात्मा को भूल जाता है। वह पशु के समान आचरण करने लगता है। श्री गुरु नानक देव जी का फरमान है :

जिहवा इंद्री सादि लुोभाना ॥
पसू भए नही मिटै नीसाना ॥ (पन्ना ९०३)

लोभ एक ऐसा विकार है जो मनुष्य को पाप के रास्ते पर ले जाता है। लोभ ही तृष्णा का मूल है। जैसे आग में घी डालने से आग बढ़ती जाती है, वैसे ही जैसे-जैसे कामनाओं की पूर्ति होती जाती है कामनायें बढ़ती जाती हैं। लोभ मनुष्य को तृष्णा के ऐसे समुद्र में फेंक देता है जिसकी कोई सीमा नहीं है, कोई अंत नहीं है। लोभी मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति की खुशामद करता रहता है तथा भक्ष्य-अभक्ष्य का अंतर भूल जाता है :

--लोभ लहरि सभु सुआनु हलकु है हलकिओ सभहि बिगारे ॥ (पन्ना ९८३)
--जिउ कूकरु हरकाइआ धावै दह दिस जाइ ॥
लोभी जंतु न जाणई भखु अभखु सभ खाइ ॥ (पन्ना ५०)

श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार जब मनुष्य के साथ लोभ रूपी कुत्ता रहता है तब आशा तथा तृष्णा रूपी दो कुत्तियां साथ फिरती रहती हैं :

एकु सुआनु दुइ सुआनी नालि ॥
भलके भउकहि सदा बइआलि ॥ (पन्ना २४)

लोभी मनुष्य का मन सदैव भटकता रहता है। उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। वह कोई भी बुरा कर्म करने में संकोच नहीं करता। पाप के रास्ते पर चल पड़ता है, मन मलिन हो जाता है :

अंतरि लोभु मनि मैलै मलु लाए ॥
मैले करम करे दुखु पाए ॥
कूड़ो कूड़ु करे वापारा कूड़ु बोलि दुखु पाइदा ॥ (पन्ना १०६२)

लोभी मनुष्य को मित्र, सम्बंधी, माता-पिता या गुरु किसी की कोई लज्जा नहीं रह जाती। वह बिना संकोच के सबके समक्ष न करने योग्य कर्म भी करने लगता है। श्री गुरु अरजन देव जी विस्तार से समझा रहे हैं :

हे लोभा लंपट संग सिरमोरह अनिक लहरी कलोलते ॥
धावंत जीआ बहु प्रकारं अनिक भांति बहु

*६२०, गली नं. २, छोटी लाइन, संतपुरा, यमुनानगर- १३५००१ (हरियाणा); फोन : ९८१२३-५८१८६

डोलते ॥
नच मित्रं नच इसटं नच बाधव नच मात पिता तव लजया ॥
अकरणं करोति अखाद्यि खाद्यं असाज्यं साजि समजया ॥
त्राहि त्राहि सरणि सुआमी बिग्याप्ति नानक हरि नरहरह ॥ (पन्ना १३५८)

लोभी मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए किसी का भी बुरा सोच सकता है, किसी को भी दुख पहुंचा सकता है। उसके अवगुण बढ़ते जाते हैं। श्री गुरु अरजन देव जी के अनुसार माया का मोह ही इसका मुख्य कारण है :

लालच झूठ बिकार मोह बिआपत मूड़े अंध ॥
लागि परे दुरगंध सिउ नानक माइआ बंध ॥ (पन्ना २५२)

मनुष्य मानसिक तनाव तथा ईर्ष्या के कारण रोगी हो जाता है। तृष्णा के कारण मनुष्य का मन अशांत रहता है :

हाइ हाइ करे दिनु राति माइआ दुखि मोहिआ जीउ ॥ (पन्ना ६९०)

लोभग्रस्त मनुष्य के (लोभी) कार्य कभी पूरे नहीं होते। मोह के तार टूटते नहीं, पदार्थों के सुख की लालसा सदा बनी रहती है। कई बार धन के लिए अपयश का पात्र भी बन जाता है, परंतु समझता नहीं :

ऊने काज न होवत पूरे ॥
कामि क्रोधि मदि सद ही झूरे ॥
करै बिकार जीअरे कै ताई ॥
गाफल संगि न तसूआ जाई ॥
धरत धोह अनिक छल जानै ॥
कउडी कउडी कउ खाकु सिरि छानै ॥
जिनि दीआ तिसै न चेतै मूलि ॥
मिथिआ लोभु न उतरै सूलु ॥ (पन्ना ८९९)

मन स्थिर नहीं रहता। कभी अत्यधिक उत्साहित हो जाता है तो कभी तनाव के कारण हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है :

कबहू जीअड़ा ऊभि चड़तु है कबहू जाइ पइआले ॥
लोभी जीअड़ा थिरु न रहतु है चारे कुंडा भाले ॥ (पन्ना ८७६)

जिस हृदय में लोभ है वहां परमात्मा का सिमरन नहीं हो सकता :

--अंतरि लहरि लोभानु परानी सो प्रभु चिति न आवै ॥ (पन्ना ७७)
--लोभ विकार जिना मनु लागा हरि विसरिआ पुरखु चंगेरा ॥
ओइ मनमुख मूड़ अगिआनी कहीअहि तिन मसतकि भागु मंदेरा ॥ (पन्ना ७११)
--तपा न होवै अंद्रहु लोभी नित माइआ नो फिरै जजमालिआ ॥ (पन्ना ३१५)

भक्त कबीर जी समझा रहे हैं कि जिस मनुष्य के अंदर झूठ तथा लोभ का बोलबाला हो वहां धर्म के स्थान पर पाप ही हो सकते हैं। परमात्मा का निवास केवल उस हृदय में होता है जहां शांति तथा पवित्रता हो। लोभी मनुष्य को मानसिक शांति कभी प्राप्त नहीं होती :

कबीरा जहा गिआनु तह धरमु है जहा झूठु तह पापु ॥
जहा लोभु तह कालु है जहा खिमा तह आपि ॥ (पन्ना १३७२)

जब तक अंदर लोभ-विकार हैं तब तक जीव प्रभु को छोड़कर अन्य द्वारों पर भटकता फिरता है :

अंतरि लोभु विकारु है दूजै भाइ खुआइ ॥
तिन जंमणु मरणु न चुकई हउमै विचि दुखु पाइ ॥ (पन्ना ९५०)

श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार लोभ जीव के लिए अंधेरा, कैदखाना बना हुआ है

तथा इसके अपने कमाये हुए पाप पैरों में लोहे की जंज़ीर बने हुए हैं :

लबु अधेरा बंदीखाना अउगण पैरि लुहारी ॥
(पन्ना ११९१)

वास्तव में परमात्मा से टूटे हुए साकत-जन बहुत लोभी होते हैं। वे कुत्ते के स्वभाव वाले कहे जाते हैं। उनके अंदर दुर्मति की मैल भरी होती है। वे जो भी करते हैं स्वार्थ के लिए ही करते हैं :

--साकत सुआन कहीअहि बहु लोभी बहु दुरमति मैलु भरीजै ॥
आपन सुआइ करहि बहु बाता तिना का विसाहु किआ कीजै ॥ *(पन्ना १३२६)*

--लोभ लहरि सुआन की संगति बिखु माइआ करंगि लगावैगो ॥ *(पन्ना १३११)*

यदि अंदर लोभ की मैल है तो बाहरी स्नान आदि से कोई लाभ नहीं होता :

अंतरि मैलु लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ ॥ *(पन्ना ५९८)*

श्री गुरु अमरदास जी सुचेत कर रहे हैं कि जहां तक हो सके लोभी मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिए। लालची मनुष्य ऐसे समय धोखा दे देता है जब कोई सहायता न कर सके :

लोभी का वेसाहु न कीजै जे का पारि वसाइ ॥
अंति कालि तिथै धुहै जिथै हथु न पाइ ॥
(पन्ना १४१७)

लालच में अंधे हुए मनुष्यों को गुरु साहिब समझा रहे हैं कि लालच छोड़ दो, यह भारी दुख का कारण है :

लालचु छोडहु अंधिहो लालचि दुखु भारी ॥
(पन्ना ४१९)

अभी भी समझ जाओ, जाग जाओ, अभी कुछ नहीं बिगड़ा :

कहा भूलिओ रे झूठे लोभ लाग ॥
कछु बिगरिओ नाहिन अजहु जाग ॥(पन्ना ११८७)

श्री गुरु तेग बहादर साहिब समझा रहे हैं जैसे फूटे हुए घड़े में से पानी धीरे-धीरे निकलता जाता है वैसे ही क्षण-क्षण करके आयु बीतती जा रही है। अभी भी सुचेत हो जाओ और परमात्मा की बंदगी के मार्ग पर चलना प्रारंभ कर दो, झूठ व लोभ वाली ज़िंदगी छोड़ दो :

चेतना है तउ चेत लै निसि दिनि मै प्रानी ॥
छिनु छिनु अउध बिहातु है फूटै घट जिउ पानी ॥१॥ रहाउ ॥
हरि गुन काहि न गावही मूरख अगिआना ॥
झूठै लालचि लागि कै नहि मरनु पछाना ॥१॥
अजहू कछु बिगरिओ नही जो प्रभ गुन गावै ॥
कहु नानक तिह भजन ते निरभै पदु पावै ॥
(पन्ना ७२६)

लोभ का कारण है-- तृष्णा। तृष्णालु मनुष्य चाहे जितना भी धन एकत्र कर ले, प्रसिद्धि प्राप्त कर ले, राजनैतिक जीवन की ऊंचाइयां छू ले परंतु वह तृप्त नहीं होता। उसके मन की असीम भूख समाप्त नहीं होती। तृष्णा की आग में जलते हुए मन को नाम-अमृत से ही शांत किया जा सकता है। गुरु-शबद का आश्रय लेकर परमात्मा के साथ जुड़ने से अंदर की सारी तृष्णाएं, सारी भूख समाप्त हो जाती है। गुरबाणी का कथन है :

--तिस की त्रिसना भुख सभ उतरै जो हरि नामु धिआवै ॥ *(पन्ना ४५१)*

--सतिगुर मिलिऐ मनु संतोखीऐ ता फिरि त्रिसना भूख न होइ ॥ *(पन्ना ४९२)*

परमात्मा को याद रखने वाले का मन सदा निर्मल, शांत और संतुष्ट रहता है :

कामु क्रोधु न लोभु बिआपै जो जन प्रभ सिउ रातिआ ॥

एकु जानहि एकु मानहि राम कै रंगि मातिआ ॥
(पन्ना ५४३)
--लबि लोभि मुहताजि विगूते इब तब फिरि पछुताई ॥
एकु सरेवै ता गति मिति पावै आवणु जाणु रहाई ॥ (पन्ना ९३०)
--एकसु चरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता ॥ (पन्ना १५६)

प्रभु-नाम को अंदर बसाने के लिए गुरु की शरण आवश्यक है। जो गुरु की मति के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, उसका मन भटकता नहीं, लोभ की मैल समाप्त हो जाती है :

--गुर बिनु सहजु न ऊपजै भाई पूछहु गिआनीआ जाइ ॥ (पन्ना ८७)
--सतिगुर दइआल किरपाल भेटत हरे कामु क्रोधु लोभु मारिआ ॥ (पन्ना ८०)

गुरु की शिक्षा पर चलने से मन में संतोष पैदा हो जाता है :

गुर बचनी समसरि सुख दूख ॥
कदे न बिआपै त्रिसना भूख ॥
मनि संतोखु सबदि गुर राजे ॥
जपि गोबिंदु पड़दे सभि काजे ॥ (पन्ना ८९७)

चरित्रवान, सत्य की राह पर चलने वाले, संतुष्ट रहने वाले मनुष्यों की संगत लोभी मनुष्य के मन की संतुष्टि में सहायक होती है। जो मनुष्य साधसंगत की सहायता से गुरु-शबद के साथ जुड़ता है, प्रभु का गुण-गायन करता है वह नाम-सिमरन के मार्ग पर चल पड़ता है। उसका मन स्थिर रहने लगता है। लोभ समाप्त हो जाता है। श्री गुरु अरजन देव जी समझा रहे हैं कि हे भाई! साधसंगत में रहकर आत्मिक जीवन देने वाले हरि-नाम-भोजन से अपने मन की भूख समाप्त कर। इस भोजन के हैरान करने वाले स्वाद हैं, जिनको बयान नहीं किया जा सकता। हे भाई! जिन्होंने साधसंगत में आकर परमात्मा का आश्रय ले लिया उनके अंदर से लोभ समाप्त हो जाता है, तृष्णा की आग बुझकर शांत हो जाती है :

अंम्रित नामु भुंचु मन माही ॥
अचरज साद ता के बरने न जाही ॥
लोभु मूआ त्रिसना बुझि थाकी ॥
पारब्रहम की सरणि जन ताकी ॥ (पन्ना ७४२)

जीव अपने शरीर की नश्वरता को भूलकर विषयों के आस्वादन को सुख का आधार मान लेता है। वह यह नहीं समझता कि जगत् का मोह मिथ्या है। श्री गुरु नानक देव जी समझा रहे हैं कि हे शरीर! तू लोभ करता हुआ अपने सिर पर लोभ, झूठ, कपट आदि के कारण किए हुए मंद कर्मों का भार उठाता फिर रहा है। तेरे जैसे की इस प्रकार गति होती देखी है जैसे धरती पर राख अस्तित्वहीन होती दिखायी देती है :

अंम्रित काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो ॥
लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि बहुतु उठावहि भारो ॥
तूं काइआ मै रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो ॥ (पन्ना १५४)

जब मन प्रभु-नाम-रस में रंगा जाता है तो लोभ समाप्त हो जाता है। मन प्रफुल्लित हो जाता है। सदा चढ़दी कला बनी रहती है। परमात्मा की कृपा हो जाये तो ही जीव लोभ से मुक्त होकर सत्य के मार्ग पर चलता हुआ प्रभु-दर पर कबूल होता है :

--लबु लोभु अहंकारु चूका सतिगुरू भला भाइआ ॥
(पन्ना ९१८)
--लबि न चलई सचि रहै सो विसटु परवाणु ॥
(पन्ना १४८)

बाबा बंदा सिंघ बहादुर के जीवन-सफर का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

*-स. सिमरजीत सिंघ**

गतांक से आगे . . .

सरहिंद फ़तहि करने के बाद बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने अपने बहादुर सिंघों सहित एक दरबार लगाया, जिसमें क्षेत्र के प्रसिद्ध चौधरी हाज़िर हुए तथा क्षेत्र के लोगों ने उन पर हुए जुल्म की दासतान दरबार में सुनाई। इस मौके पर चरनारथल का चौधरी प्रताप राय, जरग का चौधरी लखमीर आदि हाज़िर हुए तथा उन्होंने बाबा बंदा सिंघ बहादुर के आगे खिलत के रूप में चांदी का गुर्ज तथा मुहरों की थालियां पेश कीं। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने चांदी के गुर्ज तथा मुहरों की थालियों में से एक-एक मुहर रख ली। अन्य मुहरों को चौधरियों को ही क्षेत्र तथा गरीब लोगों की भलाई हेतु खर्च करने के लिए वापिस कर दिया। यहां पर बाबा बंदा सिंघ बहादुर की बहादुरी से प्रभावित होकर बहुत-से लोग जिनमें हिंदू तथा मुसलमान भी थे, अमृत छककर गुरु के सिंघ सज गए। इनमें से दीनदार ख़ान अमृत छककर दीनदार सिंघ बन गया। मीर नसीर-उ-दीन भाई नसीर सिंघ बन गया।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने एक कुशल प्रशासक की तरह अपने द्वारा जीते हुए क्षेत्रों को तीन भागों में बांटकर उनके तीन गवर्नर नियुक्त किए। ज़ालिम तथा बेईमान अहिलकार हटा दिए तथा भाई बाज़ सिंघ को सरहिंद का, भाई फ़तहि सिंघ को समाणा का तथा भाई राम सिंघ को थानेसर का राज्यपाल स्थापित कर दिया। भाई आली सिंघ को भाई बाज़ सिंघ की सहायता हेतु तथा भाई बिनोद सिंघ को भाई राम की सहायता हेतु नायब राज्यपाल स्थापित किया। इसी तरह अन्य पदों पर भी योग्य एवं ईमानदार अफ़सर नियुक्त करके ज़ालिम अफ़सरों को हटा दिया गया। सरहिंद के किले पर खालसई परचम फहरा दिया।

अफ़सरों की नियुक्ति करने के साथ-साथ बाबा बंदा सिंघ बहादुर के सामने अपने राज्य की राजधानी का चुनाव करने का बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। सरहिंद केंद्रीय स्थान था तथा इसके २८ परगनों से ५२ लाख रुपयों की वार्षिक आमदनी थी। इस जीत से करनाल से लुधियाना तक के क्षेत्र का लगान खालसे को मिलने लग गया।

इसके पश्चात् बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने एलान कर दिया कि यदि कोई मुस्लिस खालसा फौज में भर्ती होना चाहता है तो उसको नमाज़ तथा रोज़े रखने की पूर्ण छूट होगी। इस एलान से पांच हज़ार मुस्लिम खालसा फौज में भर्ती हो गए। इनमें से बहुत सारों ने बाद में सिक्ख धर्म को ग्रहण कर लिया था। इस घटना की ख़बर १८ अप्रैल, १७११ ई को बादशाह को भेजी गई जिसका ज़िक्र डॉ गंडा सिंघ ने इस तरह किया है :-

"उस (बंदा सिंघ) ने वचन दिया तथा इक़रार किया है कि मैं मुसलमानों को कोई दुख नहीं देता। चुनांचि (इस प्रकार) जिस भी मुसलमान का उसकी तरफ रुजू होता है, वह (बंदा सिंघ) उसकी दिहाड़ी तथा तनख्वाह नियत कर उसका ध्यान रखता है तथा उसको आज्ञा दी है कि नमाज़ तथा खुतबा जैसे (मुसलमान)

**उप सचिव, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर-१४३००६; फोन : ९८१४८-९८२२३*

चाहें पढ़ें। चुनांचि पांच हज़ार मुसलमान उसके साथी बन गए हैं तथा सिंघों की फौज में बांग तथा नमाज़ द्वारा सुख पा रहे हैं।"

बाबा बंदा सिंघ बहादुर सरहिंद फ़तहि करने के बाद जब घुड़ाणी, घलोटी, धमोट पहुंचे तो कुछ सिंघों ने मलेरकोटला पर हल्ला बोल कर उसको तबाह करने की सलाह की। मलेरकोटला का नवाब सिक्खों के विरुद्ध सभी मुहिमों में शामिल रहा था। दशमेश पिता श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने जब श्री अनंदपुर साहिब का किला छोड़ा तथा सरसा नदी के तट पर गुरु जी का परिवार परस्पर बिछुड़ गया उस समय गुरु-घर की श्रद्धालु तथा साहिबजादों की खिडावी (धाय; संभाल करने वाली) बीबी अनूप कौर मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मद ख़ान के हाथ आ गई थी। इस सुंदर, सुशील अमृतधारी सिंघणी ने अपनी अंतिम सांस तक सिक्खी सिदक को बरक़रार रखा। जब उसका कोई ज़ोर न चला तो उसने अपने गातरे वाली श्री साहिब (कृपाण) से अपने प्राण त्याग दिए। नवाब ने उसको कब्र में दफ़ना दिया।

बीबी अनूप कौर के बारे में सुनकर बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने मलेरकोटला की तरफ कूच करने का हुक्म दिया। मलेरकोटला का एक शाहूकार किशन चंद बाबा बंदा सिंघ बहादुर का पुराना वाकिफ़ था। बाबा बंदा सिंघ बहादुर पहले समय में उसके घर रह चुके थे। उस समय उस शाहूकार ने बाबा बंदा सिंघ बहादुर की बहुत सेवा की थी। उस शाहूकार को बाबा बंदा सिंघ बहादुर को मलेरकोटला की ओर आने का पता चल गया और वह शहर के अन्य शाहूकारों को साथ लेकर बाबा बंदा सिंघ बहादुर से आ मिला। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने उनको साथ लेकर बीबी अनूप कौर की कब्र को ढूंढा तथा उसमें से बीबी जी की मृतक देह को निकालकर पूरी गुरु-मर्यादा के अनुसार पहले अग्नि-भेंट किया तथा फिर राख आदि को जल-प्रवाह किया। मलेरकोटला के नवाब को सिर्फ इस कारण माफ कर दिया क्योंकि उसने साहिबज़ादों की शहीदी के समय 'हा' का नारा मारा था। इस तरह सिक्खों ने अपने प्रति थोड़ी-सी हमदर्दी करने वाले किसी भी व्यक्ति को कभी भुलाया नहीं, उनका मुकाबला तो सिर्फ ज़ालिमों से था।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर को जंगी नुक्ता-निगाह से सरहिंद का स्थान राजधानी बनाना उचित न लगा, क्योंकि सरहिंद मैदानी क्षेत्र में शाह रास्ते के ठीक ऊपर स्थित था। यहां शाही सेना कभी भी हमला कर सकती थी। बचाव पक्ष से इस क्षेत्र के पास कोई भी प्राकृतिक साधन मौजूद नहीं थे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने बड़ी सोच-विचार के बाद मुखलिसगढ़ को अपनी राजधानी बनाने का फैसला किया तथा इसका नाम लोहगढ़ रखा। मुखलिसगढ़ साढौरा तथा नाहन रियासत के मध्य पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। साढौरा नगर से कुछ दूर शिवालिक की पहाड़ियों की जड़ में ऊंची जगह पर मुखलिसगढ़ नामक किला होता था, जिसके खंडहर आज भी मौजूद हैं। यह किला शाहजहां बादशाह के आदेश से उसके एक अहिलकार मुखलिस ख़ान ने बनवाया था। किला एक पहाड़ी पर मौजूद था, जिसके दोनों तरफ नदी की दो धाराएं बहती थीं। इस जगह पर पहुंचने के लिए चट्टानों व खड्डों से होकर गुज़रना पड़ता था। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने इस पुराने किले की मरम्मत करवाई एवं सारा खज़ाना तथा जंगी सामान यहां ले आए। आस-पास वाले चौधरियों के साथ संपर्क स्थापित किया। यहां ही बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने सिक्ख राज्य का सिक्का तथा मुहर जारी की।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने आम लोगों की आर्थिक हालत सुधारने के लिए जमींदारा प्रबंध में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। मुगल शासन में बेनामी खेती आम बात थी। खेती कोई करता था तथा ज़मीन का मालिक कोई और होता था। एक बार साढौरा के आस-पास के गांवों के ज़मींदार के जुल्म की शिकायत लेकर हलवाहक बाबा बंदा सिंघ बहादुर के पास आए। बाबा जी ने उनको एक कतार में खड़ा कर लिया तथा भाई बाज़ सिंघ को कहा कि इन पर गोली चला दी जाए। ऐसा अद्भुत हुक्म सुनकर उनके होश-हवाश उड़ गए। बाबा जी ने उनकी निंदा की तथा कहा, आप लोग इतनी भारी संख्या में होते हुए भी मुट्ठी भर ज़मींदारों का खातिमा नहीं कर सकते। परिणाम यह निकला कि सिक्ख हलवाहक समय पाकर ज़मींदारों से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गए। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने खेती करने वालों को ज़मीनों के मालिक घोषित कर दिया। सिक्ख खुद भी बहुत संख्या में खेती करते थे। इस फैसले से उनकी आर्थिक दशा पहले से अच्छी हो गई। अब किसान खुद ही लगान देते थे तथा खुद ही पैदावार लेते थे। इस फैसले से सारे किसान बाबा बंदा सिंघ बहादुर के समर्थक बन गए।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने आम लोगों में से ईमानदार लोगों को सरदारियां बख़्श दीं। इरविन लिखता है कि बाबा बंदा सिंघ बहादुर की फौज का छोटे-से-छोटा कर्मचारी भी जब अपने गांव जाता तो अमीर-से-अमीर लोग उसका स्वागत करते। बाबा बंदा सिंघ बहादुर की बढ़ती शक्ति एवं रसूख से लोग इतने प्रभावित थे कि गांव उनारसा के लोग सिक्ख बन गए। इस क्षेत्र के फौजदार जलाल ख़ान ने उन सभी को कैद कर लिया। एक सिक्ख भाई कपूर सिंघ ने बाबा जी को जा बताया। बाबा बंदा सिंघ बहादुर उसी समय जलालाबाद की ओर चल दिए। रास्ते में उन्होंने सहारनपुर के फौजदार तथा बेहात के वीरज़ादों को हराया तथा उनके क्षेत्र पर अपना कब्ज़ा कर लिया। जरनैल जलाल ख़ान तथा पीर ख़ान मारे गए। तीन दिन तक भारी लड़ाई होती रही। चौथे दिन जलाल ख़ान ने अपने पुत्र दीनदान ख़ान को ७०० जवानों सहित भेज दिया। सिक्खों ने जलालाबाद को पूरी तरह घेर लिया। बारिश हो रही थी, जिस कारण फौज करनाल की ओर मुड़ गई तथा जलाल ख़ान ने कैद किए सारे सिक्ख शहीद करवा दिए।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर की जीतों से प्रभावित होकर दुआबा क्षेत्र के सिक्खों ने फौजदार शमस ख़ान को संदेश भेजा कि वह अपने प्रबंध में सुधार करे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर का यह उसूल था कि वह जब भी किसी क्षेत्र पर हल्ला बोलता था तो सबसे पहले चौधरी या हाकिम को ईन मान लेने हेतु चिट्ठी लिखता था। यदि वह उसकी बात मान लेता था तो हमला नहीं किया जाता था। इसी तरह सिंघों ने शमस ख़ान को पहले चिट्ठी लिखी थी किंतु फौजदार ने जेहाद का नारा मारा तथा एक लाख के लगभग जेहादियों को साथ लेकर सुलतानपुर की ओर चल पड़ा। सिक्खों के जत्थे बिखरे हुए थे। सिक्ख राहों नामक नगर की ओर चले गए और उन्होंने योजना बनाई कि शहर से बाहर पुराने भट्ठों तथा टीलों को मोर्चा बनाया जाए। सिक्खों ने राहों की गढ़ी पर हमला बोल दिया। सिक्खों ने जेहादियों के आने से पूर्व ही किले पर कब्जा कर लिया। सिंघ छोटी-छोटी टोलियां बनाकर बाहर निकलते तथा शाही सेना का नुकसान कर फिर किले में आ जाते। जेहादियों की गिनती ज्यादा होने के कारण यह पैंतरा ज्यादा देर तक चलने वाला

नहीं था। सिंघों ने जंगी पैंतरे के अनुसार ढाई फट्ट के पैंतरे की लड़ाई लड़ने की योजना बनाई। अगली रात सिंघ किले से निकलकर चल पड़े। शमस ख़ान ने उनको जाते देखकर अपनी फौज लेकर पीछा किया। शमस ख़ान थोड़ा-सा ही पीछे गया था कि रास्ते में उसको सामान से लदे कुछ ऊंट, बैल तथा एक तोप मिली जिससे उसको विश्वास हो गया कि सिंघ चले गए हैं। वो वहां से ही वापिस सुलतानपुर को चला गया। सिंघ सुबह होते ही वापिस आ गए तथा किले में मौजूद शाही फौज से घमासान लड़ाई हुई, जिसमें शमस ख़ान की फौज को बड़ी हार प्राप्त हुई। सिक्खों ने दोबारा किले पर कब्जा कर लिया।

सिक्ख यहां से जलंधर की ओर चल पड़े। रास्ते में औड़ नामक गांव था। सुच्चा नंद की एक किलानुमा हवेली इस गांव में थी। गांव के कुछ बुजुर्गों के बताए अनुसार यहां शाही फौज के साथ सिक्खों की झड़प हुई। उस झड़प में जो सिंघ शहीद हुए उनकी याद में साथ के ही गांव उड़ापड़ में गुरुद्वारा साहिब सुशोभित किया गया है, जिसके प्रति इलाके के लोगों की बहुत श्रद्धा-भावना है। यहां से सिंघ जलंधर की ओर चले गए। जलंधर के पठान सिंघों का आना सुनकर पहले ही भाग गए, जिस कारण जलंधर पर सिंघों का कब्जा आसानी से हो गया। जलंधर से सिंघों का जत्था होशियारपुर को चला गया। उस समय बज़वाड़ा बड़ा केंद्र था तथा होशियारपुर छोटा नगर था। बज़वाड़ा के हाकिमों ने सिंघों का कोई मुकाबला नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि जलंधर-होशियारपुर के इलाके पर सिंघों का कब्ज़ा हो गया तथा शमस ख़ान बशरा-ए-नाम हाकिम रह गया। सतलुज के दक्षिण दिशा में माछीवाड़ा से करनाल तक का सरहिंद का सारा इलाका सिंघों के कब्ज़े में था, जिसका सारा प्रबंध भाई बाज़ सिंघ राज्यपाल तथा भाई आली सिंघ सलौदी वाले नायब राज्यपाल के पास था, जिनके अधीन जगह-जगह सिक्ख फौजदार तथा थानेदार नियुक्त थे।

मुगल बादशाह बहादुर शाह को जब बाबा बंदा सिंघ बहादुर की जीतों का पता चला तो वो भारी सेना लेकर पंजाब की ओर चल दिया। उसने उत्तरी भारत में आने से पूर्व अवध तथा दिल्ली के गवर्नरों तथा इलाहाबाद के नाज़िम फौजदारों को बाबा बंदा सिंघ बहादुर के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए इकट्ठे होकर उसके साथ मिलने का हुक्म दिया। बरहा के सैयदों को भी अपने सिपाहियों सहित शामिल होने का निमंत्रण-पत्र भेजा गया। बहादुर शाह ने एक हुक्म भी जारी किया कि सरकारी कार्यालयों में जिन हिंदू या मुसलमानों ने दाढ़ी रखी हुई है वे कटवा दें। उसको डर था कि कहीं शाही सेना में सिक्ख घुसपैठ कर भर्ती न हो जाएं। बादशाह के पंजाब पहुंचने से पहले ही फिरोज़ ख़ान मेवाती, सुलतान कुली ख़ान, शकर ख़ान तथा अन्य अफसरों की कमान तले एक बड़ी फौज बादशाह के आगे-आगे हरावल दसते के रूप में सिक्खों की खोज हेतु चल पड़ी। उस समय सिक्ख बाबा बंदा सिंघ बहादुर की अगुआई में रियाड़की के इलाके में मौजूद थे। सोनीपत, थानेसर, समाणा, साढौरा तथा सरहिंद आदि स्थानों पर सिक्ख फौज की गिनती नाममात्र ही थी। शाही फौज ने इन इलाकों पर आसानी से कब्ज़ा कर लिया ।

भाई बिनोद सिंघ तथा भाई राम सिंघ की अगुआई तले सिंघों का मुकाबला शाही फौज के साथ तरावड़ी के पास गांव अमीनगढ़ में हुआ। सिक्ख इतने जोश के साथ लड़े कि महाबत ख़ान के पांव उखड़ गए किंतु फिरोज़ ख़ान तथा बरहा के सैयदों की वीरता ने शाही सेना को उत्साहित

कर दिया। डॉ. गंडा सिंघ लिखते हैं कि दोनों तरफ से बड़ी तबाही हुई तथा फिरोज़ ख़ान को सफलता की कोई आशा न रही। सिक्ख फौज की नफरी कम होने के कारण फिरोज़ ख़ान को लाभ हुआ तथा उसकी विजय हुई। विजय के बाद शाही फौज ने शहीद हुए सिक्ख सैनिकों की बहुत बेपति की। तीन सौ सिक्खों के सिरों को बैलगाड़ियों में लादकर बादशाह के समक्ष पेश किया गया तथा शेष बचे बहुत सारे सिक्खों की लाशें जरनैली सड़क के दोनों तरफ वृक्षों पर लटका दीं।

विजय की ख़बर सुनकर बादशाह बहुत खुश हुआ तथा उसने फिरोज़ ख़ान मेवाती को सरहिंद का सूबेदार स्थापित कर दिया। सरहिंद का सिक्ख गवर्नर भाई बाज़ सिंघ सरहिंद में मौजूद नहीं था, इसलिए उसके भ्राता भाई शाम सिंघ तथा भाई सुक्खा सिंघ ने शाही सेना का डटकर मुकाबला किया। भाई सुक्खा सिंघ लड़ता हुआ शहीदी प्राप्त कर गया। अन्य सिक्खों को सरहिंद जेल में कैद कर लिया गया। शमस ख़ान ने किला फ़तहि कर लिया। इस लड़ाई में तीन सौ सिंघ शहीदी प्राप्त कर गए।

इसके बाद बाबा बंदा सिंघ के साथ शाही फौज का मुकाबला साढौरा में हुआ। जब शाही फौज का हरावल दसता साढौरा पहुंचा तो सिक्ख उन पर टूट पड़े। इसके बारे में खाफी ख़ान लिखता है कि लड़ाई इतनी भयानक थी कि बयान नहीं की जा सकती। सिक्ख सिपाही जो फकीरों वाले लिबास में थे, ने शाही फौज को नानी याद दिला दी। शाही सेना का इतना नुकसान हुआ कि लगता था कि शाही सेना हार जाएगी। आदिल ख़ान के सभी फौजी हरन हो गए। जल्द ही अन्य शाही फौजें आ गईं तथा रुख पलट गया। सिक्ख यहां से लोहगढ़ के किले में चले गए। बादशाह भी अपना लाम-लश्कर लेकर लोहगढ़ के किले के पास पहुंच गया। डॉ. गंडा सिंघ के अनुसार, "शाही फौजें रफीउल ख़ान की कमान तले दाबर पहाड़ियों के दामन की ओर बढ़ीं। सेनापति जमदातुल-मुलक ख़ानिख़ानां की सहायता हेतु शाहज़ादा अज़ीम शाह तथा शाहज़ादा जहान शाह एवं हमीद-उद-ख़ान के दसते तैयार खड़े थे। इस तरह लोहगढ़ के किले को घेरा डालने वाली फौज की गिनती साठ हज़ार थी, जिसमें घुड़सवार तथा पैदल सिपाही शामिल थे।

अमीन ख़ान की कमान तले एक बड़े लश्कर ने बाबा बंदा सिंघ बहादुर पर चढ़ाई कर दी। मुखलिसगढ़ के किले को १६००० घुड़सवार तथा पैदल सैनिकों ने कई महीनों तक घेरे रखा किंतु किले के समीप जाने की किसी की हिम्मत न पड़ी। सिंघ रात को वैरी का कमज़ोर मोर्चा देखकर हमला बोलकर हरन हो जाते तथा फिर किले में आ जाते। इन रात के हमलों से सिंघों ने शाही सेना का बहुत नुकसान किया। इस समय बारिश की झड़ी लग गई। पौष मास की सर्दी का महीना शाही सेना के लिए मुसीबत बन गया। शाही कैंप सारे नीची सतह पर थे। इर्द-गिर्द पहाड़ी खाइयों में पानी भरने से ये नदियों की तरह बहने लगीं। सेना और घोड़े सर्दी न झेलते हुए मरने लगे। बारिश कई दिनों के बाद रुकी तो सिंघ हाथों में कृपाणें लेकर शाही सेना पर मुकाबले हेतु उतर आए। सिंघों ने सारा दिन डटकर लड़ाई की तथा शाम तक शाही सेना का बहुत नुकसान किया और शाम को फिर किले में चले गए।

दूसरे दिन सिंघों ने शाही सेना को आगे बढ़ने दिया। जब शाही सेना पूरी तरह से मार तले आ गई तो सिंघों ने गोलियों तथा तीरों की ऐसी वर्षा की कि शाही सेना गिरती-मरती हुई पीछे हट गई। सिंघ बहुत बहादुरी से लड़ते हुए

२०-२० को मारकर शहीदियां प्राप्त करते रहे। शाम तक शाही सेना किले के बहुत करीब आ गई। किले के पास आधी से ज्यादा खाई लाशों से भरी हुई थी। रात होने के कारण लड़ाई बंद हो गई।

रात के समय बाबा बंदा सिंघ बहादुर अपने एक बहादुर सिक्ख बख़शी गुलाब सिंघ को अपनी पोशाक पहनाकर १०-१२ अन्य सिंघों को किले में छोड़कर अन्य सिंघों सहित एक बार ज़बरदस्त धमाका करके शत्रु की कमज़ोर घेराबंदी तोड़कर नाहन की पहाड़ियों की तरफ निकल गए। यहां से बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने सिक्खों को इकट्ठा होने के लिए हुकमनामे भेजे। डॉ. गंडा सिंघ लिखता है कि उसने जल्दी से हुकमनामे जारी करके सिक्खों को कीरतपुर साहिब पहुंचने के लिए कहा।

मैलकम लिखता है कि अगर बहादुर शाह उत्तरी भारत में न आता तो संभव था कि बाबा बंदा सिंघ बहादुर की फौज सारे भारत पर अधिकार जमा लेती।

रोपड़ शहर की स्थिति जंगी नुक्ता-निगाह से बड़ी उचित थी। इसके उत्तर में हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियां, पूरब में हरियाणा का अंबाला क्षेत्र, दक्षिण में पटियाला तथा लुधियाना का मैदानी इलाका और पश्चिम में होशियारपुर तथा ऊना का नीम पहाड़ी क्षेत्र लगता है।

रोपड़ शहर शिवालिक की पहाड़ियों के किनारे स्थित है तथा इस क्षेत्र में कई दरिया एवं नाले चलते हैं जो उस समय पानी की ज़रूरत को मुख्य रखते हुए फौजी नुक्ता-निगाह से पशुओं तथा सैनिकों के लिए बहुत फायदेमंद थे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने इस स्थान को सिक्ख शक्ति इकट्ठी करने हेतु चुना।

यहां ही बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने शिवालिक की पहाड़ियों को खोद कर गुफाएं* बनाईं। पहाड़ी के निचले हिस्से में बनी एक अन्य गुफा में बना एक कमरा मानवीय मेहनत की कमाल का नमूना है। इन गुफाओं की हालत बहुत खस्ता हो चुकी है। एक गुफा तो ढह जाने के कारण बिलकुल बंद हो चुकी है। इसी तरह लंबी एवं तीसरी गुफा भी गिरने के किनारे है। यदि इन गुफाओं की मरम्मत हो जाए तो इनको गिरने से बचाया जा सकता है। वर्षा का पानी तथा वृक्षों की जड़ें अंदर आ जाने के कारण ये तबाही के किनारे आ गई हैं। जिमकहिर नामक गांव का अब कोई नामो-निशान नहीं रहा, क्योंकि बाबा बंदा सिंघ बहादुर के इस ठिकाने का पता चलने पर बहादुर शाह ने इस पर चढ़ाई कर दी थी। भारी युद्ध होने के कारण यह गांव पूरी तरह से तबाह हो गया था। बाबा बंदा सिंघ बहादुर की फौज के अनेकों सिपाही शहीद हो गए थे। इन शहीदों की पत्नियां भी शहीद हो गईं। राजपूतों के रिवाज़ के अनुसार इन स्त्रियों को अपने पति के साथ शहीद होने के कारण 'सती' कहकर सम्मान दिया जाता है। आजकल उस इलाके में उन सती स्त्रियों की बहुत सारी यादगारें बनी हुई हैं जिनका इलाके के लोग आज भी सम्मान करते हैं। उनकी यहां ३०० के लगभग यादें बनी हुई हैं, जिनमें से सिर्फ १०-

**गांव आसरो तथा गैल माजरा में आज भी कुछ गुफाएं देखी जा सकती हैं। लगभग एक फरलांग लंबी एक गुफा जो पूरब से पश्चिम, पहाड़ी के ऊपरी हिस्से में बनी हुई है, इस गुफा के दोनों तरफ दरवाज़े बने हुए हैं। ये दरवाज़े दुश्मन की गतिविधियों पर नज़र रखने में सहायक होते थे। लगभग इन सभी गुफाओं के प्रवेश द्वार हरियाली से ढंके हुए होने के कारण दुश्मन को इन स्थानों का आसानी से पता नहीं चलता था। इन गुफाओं की विशेषता यह है कि ये गर्मियों में ठंडी तथा सर्दियों में गर्म रहती हैं।*

१५ ही शेष रह गई हैं, जिनका इलाके के लोग आज भी सत्कार करते हैं।

इन ममटियों तथा गुफाओं के दक्षिण की तरफ बसे गांव के कुछ गणमान्य व्यक्तियों से पता चला है कि जिमकहिर नामक गांव के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उस क्षेत्र के पीने वाले पानी के कुएं तथा महल, जो पत्थरों के बने हुए थे, से चौरस कटे हुए पत्थर निकालकर लोगों ने उनको अपने मकान की दीवारों में ज़रूर लगाया है। अगर पहाड़ी क्षेत्र के थोड़े से स्थान में कई कुएं होने की बात पक्की है तो यह भी बात पक्की है कि यहां जिमकहिर नामक गांव ज़रूर बसता होगा। ये गुफाएं, जो बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने अपनी फौज के लिए किले के रूप में प्रयोग कीं, ऊपर से देखने में चाहे पहाड़ियां ही लगती हैं किंतु कला के इस अजूबे को देखकर इंसान हैरान रह जाता है।

गांव के लोगों को बाबा बंदा सिंघ बहादुर द्वारा गुफाएं खोदे जाने की पक्की जानकारी नहीं है किंतु कुछ लोगों का कहना है कि बाबा सुंदर दास ने कुछ गुफाओं की मरम्मत करवाई थी, जिसमें गांव के कई व्यक्तियों ने योगदान डाला था। इन गुफाओं को कोई सीधा रास्ता नहीं जाता बल्कि एक चोअ में से गुज़रकर जाना पड़ता है।

इन गुफाओं में रहते हुए बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने गांवों में बैठे सिंघों को संदेश भेज हथियार सजाकर इकट्ठे होने के लिए कहा। बहुत-से सिंघ बाबा बंदा सिंघ बहादुर को यहां आकर मिलने लगे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने पहाड़ी राजाओं से ईन मनवानी शुरू कर दी। जब कहिलूर के राजा भीम चंद ने ईन मानने से इन्कार कर दिया तो कहिलूर पर चढ़ाई कर दी तथा राजा हार गया। सिक्खों ने बिलासपुर शहर पर कब्जा कर लिया। डॉ. गंडा सिंघ लिखते हैं कि इसके बाद बहुत सारे पहाड़ी राजाओं ने बाबा बंदा सिंघ बहादुर की ईन मान ली।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने एक और जंगी नुक्ता-निगाह से चंबा के राजा से अपनी रिश्तेदारी कायम की। सिंघों से विचार-चर्चा कर उसने चंबा की राजकुमारी के साथ शादी कर ली। दिल्ली के दरबार में बाबा बंदा सिंघ बहादुर के बारे में चर्चा होने लगी कि ये तो पहले ही कम नहीं था अब तो पहाड़ी राजाओं के साथ रिश्तेदारी के कारण इसकी ताकत और बढ़ गई है। बाबा बंदा सिंघ बहादुर पठानकोट के रास्ते आगे बढ़ने लगे। यहां से बाबा बंदा सिंघ बहादुर राजपुर तथा बहिरामपुर की ओर चल दिए। बहादुर शाह ने रुस्तम दिलख़ान को मुकाबले के लिए भेजा। सिक्खों ने शाही फौज का बहुत नुकसान किया। सिक्खों ने सारा इलाका अपने कब्जे में ले लिया। पसरूर के पास शाही फौज ने सिक्खों का बहुत नुकसान किया तथा सिक्ख जम्मू की ओर चले गए। गांव के गरीब लोगों पर शाही फौज ने इतना कहर किया कि असंख्य लोगों को गुलाम बनाकर लाहौर की घोड़ा मंडी में पशुओं की भांति बेच दिया।

१८ फरवरी, १७१२ ई को बहादुर शाह की मृत्यु हो गई तथा दिल्ली के तख़्त पर बैठने हेतु झगड़ा शुरू हो गया। बाबा बंदा सिंघ बहादुर के लिए यह सुनहरी मौका था। वो पुनः पहाड़ियों से निकलकर साढौरा पर काबिज़ हो गया तथा सिक्ख फिर से खालसई झंडे तले इकट्ठा होने लगे।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने सन् १७१३ ई से लेकर १७१५ ई तक का समय जम्मू के समीप चिनाब के पास गुज़ारने के उपरांत मार्च, १७१५ ई में बटाला तथा कलानौर पर कब्ज़ा किया। दिल्ली के तख़्त का मुगल बादशाह फरुख्सियर था और पंजाब में अब्दुस्समद ख़ान

सूबेदार था। इन दिनों ज़करिया ख़ान जम्मू तथा पहाड़ी इलाकों में रहता था, जिसके द्वारा सिक्ख कौम पर भारी तशद्दुद किया जा रहा था। आम इलाकों में फौजदारों को खुलेआम जुल्म करने के अधिकार दिए हुए थे। कलानौर में फौजदार सहिराब ख़ान था। संतोख राय कानूनगो तथा उसके भाई अनोख राय ने कलानौर के आस-पास के गांवों में भारी तशद्दुद करना आरंभ कर दिया था। इलाके के लोगों ने तंग आकर बाबा बंदा सिंघ बहादुर के पास फरियाद की। लोगों की फरियाद सुनकर बाबा बंदा सिंघ बहादुर अपने साथियों समेत अरदासा सोधकर जम्मू होते हुए कलानौर पहुंचे। बाबा जी ने सहिराब ख़ान फौजदार को अपना रवैया बदलने का संदेश भेजा किंतु उसने कोई परवाह न करते हुए जवाब दिया कि सरहिंद की जीतों का गर्व न करो, हम कलानौर के हाकिम हिंदू-मुसलमान एकजुट हैं। हम आपका खुराखोज मिटा देंगे। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने इस अहंकार भरे उत्तर को सुनकर सिंघों सहित उसको सोधने के लिए चढ़ाई कर दी। कलानौर में बाबा जी की याद में आजकल एक सुंदर गुरुद्वारा साहिब सुशोभित है।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर जब चंबा से होते हुए गुरदास नंगल जा रहे थे तो धारकला तहसील के क्षेत्र में ठहरे, यहां आजकल गुरुद्वारा साहिब प्रतापगढ़ सुशोभित है। इस गुरुद्वारा साहिब में एक लिखित दर्ज है जो इस तरह है :-

"श्री गुरुद्वारा प्रतापगढ़ साहिब-- संक्षिप्त इतिहास :- यह वह स्थान है, जहां बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने चंबा को जाते हुए विश्राम तथा बंदगी की थी। इस स्थान से मैदान तथा पहाड़ों की तरफ के सारे रास्ते सहित नूरपुर तथा ज़िले की राजसी सरगर्मियों पर निगाह रखी जा सकती है। खालसा राज्य के नामवर जरनैल स. ज़ोरावर सिंघ ने तिब्बत तथा एशिया के इलाकों को खालसा राज्य में स्थापित किया। सिर्फ पहली तथा आखिरी बार हिन्दोस्तान के किसी जरनैल ने भूगोलिक तथा राजसी हदें बढ़ाईं। प्रतापी जीतों का सदका इस स्थान का नाम गुरुद्वारा साहिब प्रतापगढ़ पड़ गया है।"

गुरदास नंगल की कच्ची गढ़ी में बाबा बंदा सिंघ बहादुर तथा उनके अन्य सैनिक मुगलों के घेरे में आ गए। सन् १७१५ ई में जब बादशाह फरुख्सियर को बाबा बंदा सिंघ के बारे में ख़बर पहुंची तो बादशाह ने लाहौर के सूबेदार अब्दुस्समद ख़ान तथा कुमरुद्दीन ख़ान को २४००० फौज देकर सिंघों पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। इसमें आधे घुड़सवार, आधी पैदल सेना तथा तोपखाना शामिल था। मुगल फौज ने गुरदास नंगल के एक टिब्बे पर कच्ची गढ़ी को आ घेरा। सिंघों ने शाही फौज का आना सुनकर गुरदास नंगल की इस गढ़ी के एक टिब्बे के गिर्द खाई खोदकर उसमें शाही नहर को तोड़ कर पानी भर दिया। ऐसा करने से बाहर से किसी भी व्यक्ति या घोड़े का आना मुश्किल हो गया। दलेर ख़ान ने आकर किले का घेरा बहुत सख़्त कर दिया। जो सिंघ गांव में दाना, पानी, चारा आदि लेने गए हुए थे वे शाही सेना के काबू आ गए और उनको शहीद कर दिया गया। किले के भीतर अनाज का दाना और घास का एक तिनका भी न जाने दिया। मुट्ठी भर सिंघों ने ज़ालिमों का डटकर मुकाबला किया। दुश्मनों के मन में सिक्खों का इतना भय बैठ चुका था कि वे अल्लाह के पास यही दुआएं करते कि बाबा बंदा सिंघ बहादुर गढ़ी छोड़कर भाग जाएं क्योंकि बाबा जी की आश्चर्यजनक शक्ति से मुगल सैनिक ज्यादा भयभीत हो चुके थे। सिंघ ८ महीने तक मुगलों का मुकाबला करते रहे। गुरदास नंगल की इस

आठ महीने की लड़ाई ने सिक्ख कौम का एक नया इतिहास सृजित किया। असरारि समद्दी ने लिखा है, "उस (बाबा बंदा सिंघ बहादुर) की हालत इतनी कमज़ोर हो गई कि आप कहोगे कि उसने गरीबी के कोने में सौ चालीसा काटे हों। . . . अनाज का दाना मोती के दाने की तरह महिंगा हो गया तथा पानी की बूंद आदमियों के चेहरे की रौनक की तरह आलोप हो गई। सिक्ख वृक्षों की छाल को पक्षी के मास जैसी अनमोल तथा वृक्षों के पत्ते व छिलके को स्वादिष्ट भोजन से अच्छा जानते थे। उनके चेहरों पर रौनक न रही बल्कि रंग गेंहुआ भी न रहा।

. . . अगर वे प्यास से न मरते तो सर्दी से मर जाते। अगर आह की आग उनके साथ न्याय करने को आती तो वो उन्निद्र से ही मर जाते। . . . भूख के कारण वे एकम के चांद की तरह टेढ़े हो गए। अगर वे सूरज की टिकिया देखते तो वे आशा से दांत खोलते अर्थात् उसको खाने के लिए मुंह खोल लेते। वे धरती की मिट्टी चीनी की तरह चटम कर गए।"

दिसंबर, १७१५ ई को गढ़ी पर शाही फौज ने कब्जा कर लिया। लगभग ३०० सिंघों को यहीं पर शहीद कर दिया गया। बाबा बंदा सिंघ बहादुर के २०० साथी गुरदास नंगल से जलूस की शक्ल में पहले लाहौर तथा फिर दिल्ली ले जाए गए। रास्ते में अन्य गिरफ्तारियों के उपरांत सिंघों की गिनती ७४० तक पहुंच गई। बाबा बंदा सिंघ बहादुर को जंज़ीरों से जकड़कर लोहे के पिंजरे में कैद कर हाथी पर बैठाया गया। यह जलूस फरवरी, १७१६ ई में दिल्ली के लाल किले में दाख़िल हुआ। ज़करिया ख़ान ने शाही खज़ाने के इंचार्ज को प्राप्त किया कीमती माल तथा हथियार दिए। ये हथियार इस तरह थे :- तलवारें १०००, ढाला २७८, तीर कमान १७३, तोड़ेदार बंदूकें १८०, जमदाड़ खंजर ११४, करदें (छुरियां) २१७, सोने की मुहरें २३, रुपए ६०० तथा कुछ सोने के गहने।

५ मार्च, १७१६ ई को चांदनी चौक के सामने सिक्ख कैदियों का कत्लेआम शुरू हुआ। प्रतिदिन १०० सिक्खों को चबूतरा कोतवाली में लाकर शहीद किया जाता था किंतु कोई भी सिक्ख अपने धर्म से टस से मस नहीं हुआ। चबूतरा कोतवाली की जगह चांदनी चौक में गुरुद्वारा सीसगंज साहिब तथा सुनहरी मसजिद के मध्य होती थी। इस जगह पर आजकल एक स्कूल चलाया जा रहा है। ९ जून, १७१६ ई को बाबा बंदा सिंघ बहादुर तथा उनके २६ चुनिंदा साथियों को किले से बाहर लाया गया। बाबा बंदा सिंघ बहादुर को शहीद करने से पहले महिरोली में कुतुबमीनार के पास ले जाया गया। उन दिनों काका बख्तियार काकी की मज़ार पर उर्स मनाया जा रहा था, जिस कारण वहां पर भारी मात्रा में लोगों का इकट्ठ हुआ था। बाबा जी को सबसे पहले बख्तियार काकी की कब्र के चारों तरफ घुमाया गया। फिर बख्तियार काकी की मज़ार की तरफ आती सड़क पर बने दरवाज़े के बीच बैठाकर बाबा जी के सुपुत्र बाबा अजै सिंघ को कत्ल करके उसका धड़कता दिल बाबा जी के मुंह में ठूंसा गया, परंतु गुरु का सिदकी सिक्ख डोला नहीं और चढ़दी कला में रहते हुए धर्म पर दृढ़ रहा।

उसके बाद बाबा जी को बहुत सख़्त यातनाएं दी गईं। जगह-जगह से बाबा जी के शरीर का मांस नोचा गया तथा छोटे-छोटे टुकड़े करके आप जी के शरीर को बोटी-बोटी किया गया। बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने प्रभु-रज़ा मानते हुए मानसिक-आत्मिक रूप से पूरी चढ़दी कला में रहकर अपने शरीर पर सारी यातनाएं झेलते हुए शूरवीर योद्धा की भांति शहादत प्राप्त की। ☸

सिंघ सभा लहर का आरंभ

-स. शमशेर सिंघ 'अशोक'

पंजाब में सिंघ सभा लहर कब और किन हालात में शुरू हुई तथा इसके स्थापित होने के कारण क्या थे, ये ऐसे प्रश्न हैं जो कई बार गुरु-पंथ-हितैषियों के दिलों में पैदा होते रहते हैं। इस आलेख में इन्हीं प्रश्नों का जवाब देने की कोशिश की जाएगी।

सिंघ सभा लहर ईसाइयत, हिंदू समाज तथा आर्य समाज की अंधाधुंध मज़हबी कशमकश तथा गैर-मुंसिफाना कार्यवाहियों के जवाब में पैदा हुई जो कार्यवाहियां इनके द्वारा ईर्ष्यावश सिक्खों को नई रोशनी का झांसा देकर अपने अधिकार तले लाने के लिए नित्य नए सूर्य के साथ (हर रोज़) होती रहती थीं।

भारत में ईसाइयत अंग्रेजी अमलदारी का परिणाम है। शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ के जमाने में ईसाई मिशनरियों को पंजाब में दाख़िल होने की इजाज़त नहीं थी। सन् १८४९ ई में जब अंग्रेजों ने सिक्ख राज्य का खातिमा करके पंजाब पर कब्ज़ा किया तो पंजाब के लोगों को ईसाइयत की तरफ खींचने के लिए जो सबसे पहली लहर चलाई गई वो पंजाब में जगह-जगह ईसाइयत के अड्डे कायम करना और उनके द्वारा अंग्रेज़ी तालीम एवं सभ्यता की तरफ आम जनता को प्रेरणा देना था। पंजाब में केवल एक नयी हकूमत होना ही काफी नहीं था बल्कि यहां की प्रजा का हकूमत की तरफ किसी लालचवश झुकना भी राज्य-प्रबंध को पक्का करके मुकाम तक पहुंचाने के लिए आवश्यक करतब था। अंग्रेजी हकूमत यही इच्छा रखती थी और इसी दिली-मुराद को पूरा करने के लिए सन् १८५३ ई में श्री अमृतसर में क्रिस्चियन स्कूल की बुनियाद रखी गई।

इसके बिना पंजाब में ईसाइयत के प्रचार के लिए छ: बड़े स्टेशन-- कोटगढ़, कांगड़ा, बंनू, डेरा इस्माईल खां, मुलतान तथा खानपुर के अलावा चार छोटे स्टेशन-- बटाला, क्लार्काबाद, गांव दादन ख़ान तथा तरनतारन कायम किए गए। क्रिस्चियन मिशन के ये तमाम अड्डे सन् १८५२ ई से सन् १८५६ ई तक मात्र चार वर्ष की जद्दोजहद का परिणाम थे। इन ईसाई केंद्रों में नारोवाल (सियालकोट), जंडियाला गुरू, श्री अमृतसर, कश्मीर (श्रीनगर) तथा डेरा जात (सूबा सरहद) भी शामिल थे। श्री अमृतसर सिक्खों का तथा पेशावर पठानों का प्रमुख केंद्र होने के कारण सर एच. एडवर्ड्स ने सर जॉन लारेंस को एक ख़त का जवाब देते हुए लिखा था :-

There are only two obligatory points the Peshawar Valley and Majha. The rest are mere dependencies. Holding these two points you will hold whole Punjab.

(Vide the Punjab & Sindh Mission by Robert Clark, M.A. 1885, P.38)

(अर्थात् पेशावर की वादी एवं क्षेत्र माझा (पंजाब) इन दो केंद्रों को यदि कब्जे में किया जाए तो सारा पंजाब आपके कब्जे में आ जाएगा।)

सर जॉन लारेंस ने इन दोनों केंद्रों को समक्ष रखते हुए दोनों जगहों पर अपनी हकूमत जमाने के लिए बड़ी सक्रियता तथा कठिन संघर्ष

के साथ काम करना शुरू कर दिया। सर जॉन लारेंस, जो पंजाब के बोर्ड ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन का प्रमुख अधिकारी था, ने ईसाई मिशनरियों के खुलेआम प्रचार हेतु पांच सौ रुपए मासिक ख़ज़ाने में से देना शुरू किए। महाराजा दलीप सिंघ को पंजाब से बाहर फ़तहिगढ़ (उत्तर प्रदेश) ले जाकर पहले तो ईसाई बनाया, फिर सिक्खों के इस मज़लूम एवं मासूम महाराजा के जेब-खर्च में से श्री अमृतसर के मिशन स्कूल के लिए बतौर सहायता पांच सौ रुपए वार्षिक लगातार कई वर्ष दिलाए जाते रहे। इस ज्यादती का परिणाम यह हुआ कि कई प्रसिद्ध सिक्ख खानदान, जो अपने धर्म से अच्छी तरह वाकिफ़ नहीं थे, धीरे-धीरे ईसाई बनने लगे और इस प्रकार ईसाइयों की संख्या, जो सन् १८५१ ई में शून्य के बराबर थी, वही सिंघ सभा लहर के ज़माने सन् १८८० ई में १५०१ तक पहुंच गई।

ईसाइयत का यह प्रचार केवल पादरियों तक ही सीमित नहीं रखा गया बल्कि सरकार के तालीम (शिक्षा) विभाग में भी इसको ज़बरदस्ती दाख़िल करने की कोशिश की गई और ईसाई अध्यापक सरकारी स्कूलों में बाइबल एवं अंजील पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। तालीम विभाग के एक मुनसिफ मिज़ाज अंग्रेज डायरेक्टर द्वारा एक बार सरकार के एकतरफा व्यवहार का विरोध भी किया गया, मगर वह विरोध उस अधिकारी के रहने तक ही महदूद रहा तथा बाद में वही हाल हुआ जो अंग्रेज ईसाइयों की दिली तमन्ना के बिलकुल मुताबिक था।

पंजाब एण्ड सिंध मिशन्स (क्लार्क) नामक पुस्तक की लिखित के आधार पर, जैसे कि वाकफियत मिलती है, अंग्रेज ईसाई उस समय चाहते थे कि यदि सारा पंजाब नहीं तो कम से कम पेशावर एवं माझा क्षेत्र ही ईसाई बन जाए। यह सिक्ख राज्य पर विजय पाने की भांति इस देश पर एक बड़ी भारी जीत होगी, क्योंकि सूबा सरहद (पिशावर आदि) के पठान तथा माझा के सिक्ख दोनों लासानी बहादुर एवं योद्धा हैं। यदि ये दोनों ईसाइयत की आगोश में आ जाएं तो फिर इस देश में शेष कुछ रह ही नहीं जाता, इसलिए अंग्रेज ईसाई इन दोनों क्षेत्रों में ईसाइयत का प्रचार करने पर ज्यादा ज़ोर देते रहे। श्री अमृतसर मिशन स्कूल ने तो अंग्रेजी तालीम के बहाने सिक्ख, हिंदू, तथा मुसलमान विद्यार्थियों में ईसाइयत का प्रचार करने में कोई कसर बाकी न छोड़ी। अंग्रेजी पादरी पंजाब को ईसाई बनाने की कितनी ज़बरदस्त दिली तमन्ना रखते थे वो इसी बात से अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि जब सन् १८०९ ई में सतलुज दरिया सिक्ख राज्य तथा अंग्रेजी हकूमत के दरमियान सीमा करार दिया गया तो एक पादरी लुधियाना से सतलुज दरिया के किनारे पहुंचा। उसने पंजाब की तरफ हाथ उठाकर कहा, "हमने इस क्षेत्र को खुदा के नाम पर फ़तहि किया।" इसके अलावा एक अन्य पादरी लुधियाना आया। उसने रात को सपना देखा कि सारे पंजाब के लोग ईसाई बनकर उसके सामने आ खड़े हुए हैं।

'पंजाब एण्ड सिंध मिशन्स' नामक पुस्तक में मि क्लार्क ने इन दोनों बातों का भावना सहित ज़िक्र किया है और इस सपने के जल्दी ही पूरा होने की आशा प्रकट की है। इसके बाद सन् १८५६ ई से इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर पंजाब में ईसाइयत के प्रचार के लिए और भी केंद्र बनाए गए। पहले छः केंद्र कोटगढ़, कांगड़ा आदि थे, बाद में इनकी जगह १५ केंद्रीय मिशन स्टेशन तथा चार छोटे स्टेशनों की जगह १३ ब्रांच स्टेशन स्थापित किए गए। इसके साथ ही जनाना एवं मरदाना ईसाई मिशन स्कूलों की संख्या और भी बढ़ाई गई। इन

मिशन स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी। अंग्रेजी एवं देसी भाषाओं के समाचार पत्रों में, जो ईसाइयत के पक्के पैरोकार थे, पंजाब के ईसाई मिशनों तथा मिशनरी स्कूलों की विकासशील ढंग की रिपोर्टें छपती थीं। अंग्रेजी में सन् १८५५-५६ में लाहौर करानीकल नामक एक समाचार-पत्र प्रकाशित होता था, जो नई रोशनी के शैक्षणिक प्रचार के बहाने ईसाइयत के विकास के लिए अंग्रेज हकूमत की पीठ थपथपाता रहता था। उस समय ईसाई लोग ही थे जो पंजाब के शैक्षणिक, शिष्टाचारक तथा सामाजिक वायुमंडल पर पूरी तरह से फैले होने का दम भरते थे। वे अपने इसी ख़्याली प्रचार में इस देश की तरक्की होती समझते थे, मगर वास्तव में यहां की आम जनता या गरीब प्रजा क्या कुछ चाहती थी, इसके बारे में उन्हें कोई चिंता नहीं थी।

सन् १८५७ ई में गदर के अवसर पर भारत के कुछ हिंदुओं एवं मुसलमानों में राजनीतिक जागृति आई और दोनों कई कारणों के कारण अंग्रेजी हकूमत का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गए, मगर दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुर शाह 'जफर' की भीतरी कमज़ोरियों के कारण हुई हार के बाद बागी हिंदू एवं मुसलमान दोनों ही तलवार की नोक पर सम्पूर्ण रूप से दबा दिए गए। अब हिंदू-मुस्लिम सभ्याचार के बचाव के लिए उनके सामने अन्य कोई इलाज शेष नहीं रह गया था, बजाय इसके कि वे दोनों नए सिरे से किसी टेढ़े-मेढ़े ढंग से अंग्रेजी हकूमत के आगे पूरी तरह से झुकें तथा पुनः उसी तरह दिली मेलजोल स्थापित करें। सन् १८५९ से ही इस गदर से शिक्षा लेकर हिंदुओं ने झुककर कई ढंग अंग्रेजी सरकार की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अपना लिए। फिर बचे-खुचे मुसलमानों ने भी सर सैयद अहमद आदि नेताओं द्वारा हिंदुओं के नक़्शे-कदम पर चलकर अपने आप को अंग्रेजी सरकार का वफ़ादार साबित करना शुरू कर दिया। इस मेलजोल का परिणाम यह हुआ कि हिंदुओं ने अपने सभ्याचार की रक्षा के लिए कुछ सनातनी संस्थाएं और मुसलमानों ने इसलामी अंजुमनें बनानी शुरू कर दीं। स्वामी दयानंद ने सन् १८७५ ई में आर्य समाज कायम करके वैदिक सभ्यता के प्रचार के लिए एक खुला दायरा बना दिया। हिंदुओं की इस नई सुधारक लहर आर्य समाज पर बंगाल की ब्रह्मू समाजी लहर का पूरा प्रभाव पड़ा। कलकत्ता में इससे काफी समय पहले राजा राम मोहन राय ने शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ के समय में ही इस नई सुधारक लहर ब्रह्मू समाज को जन्म दिया था, इसलिए इस लहर का प्रभाव स्वामी दयानंद के साथ अन्य विकासशील हिंदुओं पर पड़ना स्वाभाविक था। हिंदुओं ने आर्य समाज की भांति ही सनातन धर्म के नाम पर कई अलग-अलग सोसायटियां बनाईं तथा मुसलमानों ने भी इसी तरह कई मज़हबी अंजुमनों को जन्म दिया। उस समय इन मज़हबी दलों के सामने अपने-अपने धर्म तथा शैक्षणिक प्रचार के बिना अन्य कोई राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था।

हिंदू-मुस्लिम धार्मिक तथा समाज सुधार की लहरों को एक तरफ रखकर पंजाब की सारी शैक्षणिक उन्नति के लिए डॉक्टर लाईटनर के अथक यत्नों से सन् १८६५ ई में अंजुमन पंजाब बनी और इसका नाम रखा गया-- 'अंजुमन ईसाइयत अलूम मुफीदाइ पंजाब'। बाद में यह अंजुमन पंजाब धीरे-धीरे पंजाब यूनीवर्सिटी की शक्ल अख्तियार कर गई। सिक्खों में सिक्ख राज्य के बाद धार्मिक व सामाजिक सुधार के लिए जो लहरें चलीं वे थीं 'निरंकारी लहर' तथा 'नामधारी अथवा कूका लहर'। निरंकारी लहर पंजाब पर अंग्रेजों का कब्जा होने से कुछ समय

बाद तथा नामधारी लहर सन् १८६० से सन् १८७२ तक लगभग १३ वर्ष पूरे ज़ोर-शोर से चलती रही। पहली लहर नरम ख़्याल वाले सिक्खों की थी तथा दूसरी लहर गर्म ख़्याल वाले सिक्खों की थी। बस, यही इन दोनों लहरों का सबसे बड़ा अंतर था। इन लहरों का मूल मुद्दा सिक्ख रहन-सहन के दोष एवं कुरीतियों, जो समय के कुचक्र के साथ सिक्ख पंथ में ज़बरदस्ती आ गई थीं, को दूर करना था। शैक्षणिक नुक्ता-निगाह से ये दोनों लहरें थोड़ा दूर रहने के कारण इतनी सफलता न प्राप्त कर सकीं। नामधारी लहर की असफलता का एक बड़ा कारण यह भी था कि पंजाब में अभी पूरी जागृति नहीं आई थी। अंग्रेजी सरकार सन् १८५७ का गदर दबाने के कारण भारतवासियों, विशेषत: पंजाबियों की तरफ से और भी सतर्क हो गई थी, जिस कारण नामधारियों में राजनीतिक जागृति का अनुभव करके ही हकूमत द्वारा उनको पूरी तरह से दबाया और उनमें से कितने ही सिंघ सन् १८७२ में तोपों से उड़ा दिए गए या फांसी पर चढ़ा दिए गए।

हिंदू तथा मुसलमान, जो उस समय अंग्रेजी सरकार के कदम के साथ कदम मिला कर चलने लग पड़े थे, विद्या के पक्ष से सिक्खों के मुकाबले काफी आगे निकल गए। उन्होंने अपने-अपने स्कूल स्थापित कर लिए तथा अपनी धार्मिक संस्थाओं के अच्छी तरह से पैर भी जमा लिए। सिक्खों के लिए इस समय हिंदुओं, मुसलमानों एवं ईसाइयों के मुकाबले अपनी हिफाज़त करना आवश्यक था वो भी अपने आपको ठीक समय के मुताबिक शैक्षणिक उन्नति की पगडंडी पर चलते हुए रखकर, क्योंकि उस समय सिक्खों की गिनती पंजाब में नमूना मात्र ही रह गई थी। सिक्ख राज्य के खातिमे के बाद सिक्खों की गिनती में गिरावट इतनी तेजी से हुई कि उसे देखकर कई सच्चाई-पसंद अंग्रेज भी हैरान थे। शैक्षणिक उन्नति के किसी निर्मित कार्यक्रम के बिना इस नाजुक अवसर पर जबकि एक तरफ आर्य समाजी, दूसरी तरफ ईसाई और तीसरी तरह ब्रह्मू समाजी नई रोशनी का झांसा देकर सिक्ख नौजवानों को अपने धर्म से पतित होने के लिए व्यवहारिक रूप से हमेशा प्रेरित करते रहते थे, इस दशा में गुरमति-विद्या से हीन होने के कारण सिक्खों के बचाव का अन्य कोई मार्ग नहीं था।

सन् १८४९ ई में पंजाब पर अंग्रेजी अधिकार होते ही धीरे-धीरे देश में पश्चिम की नकल कर जगह-जगह छापेखाने खुले, अंग्रेजी-उर्दू-भारतीय आदि भाषाओं में समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे। ईसाइयत के प्रभाव तले मज़हबों की खींचतान बढ़ी और इश्तिहारबाज़ी का ज़माना आया। इसके साथ ही नई तर्ज की लिखितें व तकरीरें हर रोज़ नए गुल खिलाने लगीं। इस इश्तिहारबाज़ी, जो धर्म के नाम पर हो रही थी, से बचने के लिए आला पैमाने पर तैयारी की ज़रूरत थी, जिस कारण सिक्खों में एक नयी तीसरी सिंघ सभा लहर चलाने की ज़रूरत पड़ी। सबसे बड़ा कारण इसका यह था कि निरंकारी एवं नामधारी लहरें समय के मुताबिक इलम तथा अदब के पक्ष से काफी हद तक पिछड़ी हुई थीं। यह कमी सिंघ सभा लहर द्वारा सिक्ख शैक्षणिक लहर चलने पर ही पूरी हो सकती थी, नहीं तो सिक्ख हिंदू, मुसलमान एवं ईसाइयों के मुकाबले बहुत पिछड़े रहे थे। सिक्ख वास्तव में मैदान-ए-जंग के शूरवीर होने के कारण तब ही जोश में आते हैं जब कोई खौफ़नाक घटना मगरमच्छ की तरह मुंह फैलाए इनके सामने आकर खड़ी हो जाए, तब कहीं जाकर इनसे किसी जोश उपजाऊ लहर की आशा की जा सकती है।

सन् १८७२ में अंग्रेज सरकार द्वारा नामधारी लहर को बुरी तरह दबाए जाने पर तथा उसके बाद अगले ही वर्ष सन् १८७३ में चार सिक्ख नौजवानों द्वारा, जो क्रिस्चियन मिशन स्कूल, श्री अमृतसर के विद्यार्थी थे, ईसाई बनने की इच्छा ज़ाहिर करने पर सिक्खों में जोश आया तथा कुछ गणमान्य सज्जनों द्वारा बड़ी मुश्किल से समझाने-बुझाने पर उन सिक्ख विद्यार्थियों को ईसाई बनने से रोका गया।

इसके बाद गुरु का बाग, श्री अमृतसर में इस ख़्याल को मुख्य रखकर कि कहीं सिक्खों को इसी तरह अन्य मुश्किलों का सामना न करना पड़े, सिक्ख धर्म की रक्षा व सामाजिक रीति-रिवाज़ों के सुधार हेतु १५ सावन, संवत् १९३५ बिक्रमी के मुताबिक ३० जुलाई, सन् १८७८ ई को श्री गुरु सिंघ सभा की स्थापना की गयी। सरदार ठाकुर सिंघ संधावालिए जो शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ के शाही ख़ानदान के साथ लहू-मांस का सम्बंध रखते थे तथा धार्मिक पक्ष से बड़े गहरे जज़्बे वाले सकारात्मक सोच के व्यक्ति थे, इस सभा के (प्रथम) अध्यक्ष बनाए गए तथा प्रसिद्ध विद्वान ज्ञानी सरदूल सिंघ सचिव स्थापित किए गए। सिक्खों की यह सबसे पहली सिंघ सभा थी, जिसकी रूप-रेखा में कुंवर बिक्रम सिंघ कपूरथला, बाबा खेम सिंघ (बिदी) कलर, ज़िला रावलपिंडी आदि गणमान्य सिक्खों ने आगे बढ़कर बड़ी गर्मजोशी से पूरा-पूरा योगदान दिया।

कविता

मज़बूरी बनाम लोभ

*-श्री प्रशांत अग्रवाल**

आदमी हालात से मज़बूर हो जाता है, माना।
पर मुझे सच्चे हृदय से, बात इतनी-सी बताना।
क्या हमारा लोभ अपना रंग न दिखलाये है?
आड़ ले मज़बूरियों की, क्या नहीं बहकाये है?
मज़बूरी है, कहते-कहते, आदत-सी बन जाती है।
गलत काम की लत पड़ जाती, लोभ-वृत्ति आती है।
मज़बूरी जब न रहती है, तब भी लत न छूटे है।
मज़बूरी के बंध टूटते, लोभ-बंध न टूटे है।
मज़बूरी और लोभ-वृत्ति में अंतर करना जानें!
मन गढ़ता है कई बहाने, चंचल मन की न माने!
ऊपर उठकर खुद को देखें, सत्य इसी को पाएंगे।
लोभों के मुश्किल बंधन में, खुद को जकड़ा पाएंगे।
आओ, थोड़ी हिम्मत करके, लोभों के बंधन तोड़ें!
मुक्ति की अनुभूति कर, 'सच्चे सुख' से नाता जोड़ें!

*४०, बजरिया मोतीलाल, बरेली-२४३००३ (उ. प्र.), मो. : ९४११६०७६७२

राष्ट्रीय एकता तथा सांप्रदायिक सद्‌भाव के प्रतीक : शहीद सरदार ऊधम सिंघ

*-डॉ. विभा सिंघ**

राम मोहम्मद सिंघ आज़ाद के नाम से प्रसिद्ध सरदार ऊधम सिंघ का जन्म २६ दिसंबर, १८९९ ई को पंजाब के कसबा सुनाम में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार टहल सिंघ था। अल्प आयु में ही ये मां एवं पिता के प्यार से वंचित हो गए। अपने छोटे भाई सरदार साधू सिंघ के साथ श्री अमृतसर के पुतलीघर स्थित सेंट्रल खालसा यतीमखाना में भर्ती हो गए। यहां इन्होंने पंजाबी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया तथा हिंदी और उर्दू भी लिखना-पढ़ना सीखा। बाद में ये अंग्रेजी में भी प्रवीण हो गए। इन्होंने अपना निर्वाह कुशल कारीगर के रूप में किया।

१९१९ ई की वैसाखी, जिसे भारतीय इतिहास में खूनी वैसाखी के नाम से भी जानते हैं, ने सरदार ऊधम सिंघ के जीवन को नया मोड़ दिया। उस समय स. ऊधम सिंघ की आयु १९ वर्ष थी। वैसाखी जहां खालसा पंथ के जन्म-दिन के रूप में जाना जाता त्यौहार है वहीं गेहूं की फसल की कटाई के साथ संबंध रूप में भी विख्यात है। इस दिन पंजाब का प्रत्येक वर्ग तथा समुदाय प्रसन्नता से भरा होता है। १३ अप्रैल, १९१९ ई को हज़ारों हिंदू, मुसलमान तथा सिक्ख श्री अमृतसर के जलियां वाला बाग में इकट्ठे हुए थे और शांतमयी ढंग से जलसा कर रहे थे। श्री अमृतसर आए हुए लोगों ने देखा कि यहां की फिज़ा कुछ बदली हुई सी है, लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई नहीं पड़ रही। इसका कारण यह था कि श्री अमृतसर के लोग स्वतंत्रता सेनानी डॉ सत्यपाल और डॉ सैफुद्दीन किचलू की गिरफ्तारी से क्षुब्ध थे। जलसे के दौरान जलियां वाला बाग के बाज़ार की तंग गलियों से होते हुए ब्रिटिश सिपाहियों के दो दस्ते बाग में पहुंचे। उन्होंने मोर्चा लगाकर भीड़ की तरफ राइफलें तान लीं। पलक झपकते ही राइफलों ने गरजना शुरू कर दिया। हंसराज मंच से चिल्लाए-- "भाइयो! शांति रखो, शांति!! वे केवल हवाई फायर कर रहे हैं।" जब ब्रिगेडियर जनरल ई एच. डायर ने यह सुना तो वह अपने सिपाहियों पर चिल्लाया कि "तुम लोग हवा में गोलियां क्यों दाग रहे हो? इन पर गोलियां चलाओ।" उस समय शाम के साढ़े पांच बजे थे। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना था कि राइफलें उस रास्ते की ओर मुड़ गई थीं, जहां से लोग निकल-निकल कर भाग रहे थे। थोड़े ही समय में बाग में खून ही खून दिखाई देने लगा। चारों ओर लाशें ही लाशें बिखरी पड़ी थीं। थोड़ी देर में ही काली अंधियारी रात फैल गई।

इस नरसंहार का खलनायक जनरल डायर था। उसने हंटर आयोग को बताया कि उसने यह फैसला तब लिया, जब वह अपनी मोटर कार से वहां पहुंचा। उसने यह इरादा किया कि वहां उपस्थित सभी लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाए। जांच के बाद यह भी ज्ञात हुआ कि उसने वहां से लोगों को हट जाने की चेतावनी देना भी आवश्यक नहीं समझा। उसके पागलपन की सीमा यहां तक बढ़ गई थी कि उसने ज़िले के डिप्टी कमिश्नर से सलाह भी न ली तथा न ही डिप्टी कमिश्नर मौके पर उपस्थित था। जनरल डायर ने गवाही के अंत में कहा कि वह समझता था कि जलियां वाला बाग की गोलीबारी उसका कर्त्तव्य था . . . एक भीषण कर्त्तव्य। वह भारत के लोगों को सबक सिखाना चाहता था।

हंटर आयोग की रिपोर्ट के अनुसार सोलह

*विभावरी जी-९, सूर्यपुरम्, नंदनपुरा, झांसी-२८४००३ (उ. प्र.) फोन : ९४१५०-५५६५५

सौ पचास राउंड गोलियां चलाई गईं और पंद्रह सौ सोलह व्यक्ति शहीद हुए। रिपोर्ट में कहा गया कि जलियां वाला बाग ज़मीन का एक चौकोर टुकड़ा है, जिसमें मकान बनाने का सामान और मलबा पड़ा था। इसके चारों ओर दीवारें हैं और मकान हैं। इससे बाहर आने-जाने के रास्ते बहुत कम हैं। जिस तरफ से जनरल डायर घुसा, ऊंचाई थी। बाग के दूसरे किनारे पर भारी भीड़ जमा थी, जहां जनरल डायर ने अपने दस्ते खड़े किए थे। वहां से करीब डेढ़ सौ गज की दूरी पर बने मंच से एक व्यक्ति भाषण दे रहा था। डायर २५ गोरखा जवान, जो नेपाली थे और २५ बलूची जवानों को लेकर गया, जो राइफलों से लैस थे। ४० खुकरी लिए गोरखे और दो बख़्तरबंद गाड़ियां भी उसके साथ थीं।

जनरल डायर के इस जघन्य कृत्य को लेफ्टिनेंट गवर्नर माइकेल ओ डायर ने सही ठहराया। उसने कहा कि उसका कदम ठीक था। लेफ्टिनेंट गवर्नर इसकी पुष्टि करता है। लेफ्टिनेंट गवर्नर का यह कथन था कि यह गोलीबारी सैनिक दृष्टि से हौसला बढ़ाने के लिए की गई थी।

इस घटना के बाद अंग्रेजों का दमन-चक्र बढ़ता गया और क्रांतिकारियों ने इसका सामना करने के लिए सिर पर कफ़न बांध लिया। क्रांतिकारी गीत 'पगड़ी संभाल जट्टा' गली-गली गूंजने लगा। इसके रचयिता बांकेदयाल और मौलवी अब्दुल हक ने सबके दिलों पर अमिट छाप लगा दी। इस गीत को अंग्रेजी सरकार ने प्रतिबंधित करने का विचार किया। उसके बाद प्रत्येक वर्ष वैसाखी पर्व पर जलियां वाला बाग में जनसभाएं होतीं तथा देश को शीघ्र आज़ादी दिलाने का प्रण किया जाने लगा।

जलियां वाला बाग कांड के तीन प्रमुख खलनायक थे-- पंजाब का लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकेल ओ डायर, भारत में जन्मा सैनिक अधिकारी ब्रिगेडियर जनरल ई एच डायर और भारत का सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड जेटलैंड।

सरदार ऊधम सिंघ ने जलियां वाला बाग का हत्याकांड अपनी आंखों से देखा था। उसने इसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की। इसका प्रमाण उसकी डायरी से भी ज्ञात होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका गया। वहां से वह अमेरिका पहुंचा जहां उसने भारत की आज़ादी के लिए संघर्षरत क्रांतिकारियों से भेंट की। १९२३ में वो इंग्लैंड गया। १९२८ ई में सरदार भगत सिंघ द्वारा तुरंत बुलाए जाने पर वह भारत लौट आया। लाहौर पहुंचने पर उसे आयुध अधिनियम के उल्लंघन में गिरफ्तार कर लिया गया और मुकद्दमे का नाटक कर ४ वर्ष की कठोर सज़ा दी गई। २३ मार्च, १९३१ ई को जब सरदार भगत सिंघ को फांसी दी गई तो सरदार ऊधम सिंघ दूसरी जेल में था। १९३२ ई में जेल से रिहा हुआ तो कुछ दिनों तक उसने श्री अमृतसर में एक दुकान की, जिसके साइन बोर्ड पर उसका नाम 'राम मोहम्मद सिंघ आज़ाद' लिखा हुआ था।

१९३३ ई में वह पुलिस को चकमा देकर जर्मनी चला गया। बर्लिन से वह लंदन पहुंचा। वहां उसने अपना इरादा छिपाए रखने हेतु इंजीनियरिंग के कोर्स में प्रशिक्षण के लिए दाख़िला ले लिया। उसे अपना नाम कई बार बदलना पड़ा। कभी वह उदय सिंघ बना तो कभी शेर सिंघ और कभी फ्रेंक बारजिक, तो कभी राम मोहम्मद सिंघ आज़ाद। जलियां वाला बाग का साका उसके दिमाग पर छाया था और वह प्रतिशोध की आग में जलता रहा। तब तक जनरल डायर मर चुका था। माइकेल ओ डायर और लार्ड जेटलैंड अभी ज़िंदा थे। सरदार ऊधम सिंघ इन दोनों के पीछे लग गया और उनकी हरकतों पर नज़र रखने लगा। उसने एक रिवाल्वर खरीदा। वह उसकी बराबर सफाई करता तथा उसमें बराबर तेल डालता रहता था। वह उसे गोलियों से भर कर सदा अपने पास

रखता और मौके की ताक में रहता था।

दिन, महीने और साल यूं ही गुज़र गए। फिर १३ मार्च, १९४० ई को वह दिन भी आ गया, जब वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया। इस दिन माइकेल ओ डायर और लॉर्ड जेटलैंड को कैक्सटन हॉल में रॉयल सेंट्रल एशिया सोसाइटी तथा ईस्ट इंडियन एसोसियेशन द्वारा आयोजित एक गोष्ठि में भाग लेना था। लार्ड जेटलैंड को इसकी अध्यक्षता करनी थी और उसी को इसका उद्घाटन भी करना था। सरदार ऊधम सिंघ चुपके से जाकर मंच से कुछ दूरी पर बैठ गया। माइकेल ओ डायर ने उत्तेजक भाषण दिया। उसने भारत के विरुद्ध विषवमन किया और कठोर नीति अपनाए जाने की वकालत की। जैसे ही वह बैठने के लिए मुड़ा और सचिव धन्यवाद देने के लिए खड़ा हुआ, सरदार ऊधम सिंघ ने रिवाल्वर निकालकर माइकेल पर गोली दाग दी। वह वहीं ढेर हो गया। उस समय शाम के साढ़े चार बजे थे। लॉर्ड जेटलैंड घायल हो गया। हॉल में भगदड़ मच गई। सरदार ऊधम सिंघ आसानी से बच निकल सकता था, लेकिन वह दृढ़ता से खड़ा रहा। उसने सीना तानकर कहा कि "माइकेल को मैंने मारा है, किसी को घबराने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

उसे गिरफ्तार कर लिया गया और २ अप्रैल, १९४० ई को अदालत में पेश किया गया। सरदार ऊधम सिंघ के जीवन का वह स्वर्णिम दिन था जब उसने ब्रिटिश मजिस्ट्रेट के सामने बयान दिया-- "यह काम मैंने किया। मैंने इसलिए किया, क्योंकि मैं उस व्यक्ति से चिढ़ा था। उसके साथ ऐसा ही किया जाना चाहिए था। वह असली अपराधी था। वह मेरे देश की आत्मा को कुचल देना चाहता था, इसलिए मैंने उसे कुचल दिया। पूरे इक्कीस साल तक मैं बदले की आग में जलता रहा। मुझे खुशी है कि मैंने यह काम पूरा किया। मैं अपने भाइयों के लिए मर रहा हूं। मैं अपने देश के लिए मर रहा हूं। क्या लॉर्ड जेटलैंड मर गया? हां, उसे भी मरना चाहिए। मैंने उसे भी दो गोलियां मारी थीं। मैंने ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में अपने देशवासियों को भूखे मरते हुए देखा है। मैंने उसका विरोध किया है। यह मेरा कर्त्तव्य था। मेरा इससे बड़ा और क्या सम्मान हो सकता है कि मैं मातृभूमि के लिए मरूं।"

जब मजिस्ट्रेट ने उसका नाम पूछा तो उसने कहा कि "मेरा नाम राम मोहम्मद सिंघ आज़ाद है। राम-- हिंदू, मोहम्मद-- मुसलमान, सिंघ-- सिक्ख और आज़ाद का अर्थ है-- भारत की आज़ादी। मुझे किसी भी सज़ा पर अफसोस न होगा।" उसे मृत्यु की सज़ा सुनाई गई।

सरदार ऊधम सिंघ को लंदन में ब्रिसटन जेल में रखा गया। जेल से उसने अपने मित्रों को जो पत्र लिखे, उसमें कहा गया था कि मेरी पैरवी पर कोई पैसा खर्च न किया जाए। इसके बजाए मुझे उर्दू और पंजाबी की किताबें भेजी जाएं-- खास तौर से भारतीय इतिहास के बारे में। अपने अंतिम पत्र में उसने शिकायत की कि मेरे मित्रों द्वारा जो पुस्तकें भेजी जा रही हैं वह जेल अधिकारियों द्वारा मुझे नहीं दी जाती हैं। ब्रिसटन जेल से उसे पेंटोविले जेल भेज दिया गया और ३१ जुलाई, १९४० ई को उसे फांसी दे दी गई।

पंजाब सरकार और केंद्र सरकार के लगातार प्रयत्नों के बाद शहीद सरदार ऊधम सिंघ के अवशेष १९ जुलाई, १९७४ ई को भारत लाए गए और पालम हवाई अड्डे पर राष्ट्रीय नेताओं ने उनको ससम्मान उतारा। पांच दिन तक दिल्ली में रहने के पश्चात् उन्हें हरिद्वार में गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया गया। राष्ट्र ऐसे शहीदों के बलिदान से कभी उऋण नहीं हो सकता। शहीद सरदार ऊधम सिंघ का नाम हमारे इतिहास में मणिमाणिक की भांति सदैव दमकता रहेगा और हमें देश-भक्ति, राष्ट्रीय एकता तथा सांप्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा देता रहेगा।

गुरबाणी चिंतनधारा : १०२

आसा की वार : विचार व्याख्या

*-डॉ. मनजीत कौर**

सलोक म: १ ॥
मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु ॥
बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु ॥
हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु ॥
तीरथि नावहि अरचा पूजा अगर वासु बहकारु ॥
जोगी सुंनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु ॥
सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु ॥
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ॥
दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ॥
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार ॥
इकि होदा खाइ चलहि ऐथाऊ तिना भि काई कार ॥
जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ॥
ओइ जि आखहि सु तूंहै जाणहि तिना भि तेरी सार ॥
नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पा छारु ॥ (पन्ना ४६५-६६)

उपरोक्त सलोक में श्री गुरु नानक देव जी विविध धर्मों के लोगों की पूजा-विधियों तथा परमात्मा को पाने की विविध नियमावलियों का वर्णन करते हुए यही स्पष्ट करते हैं कि भक्त-जनों को तो केवल प्रभु के गुणानुवाद की भूख लगी रहती है। परमेश्वर का नाम ही उनका जीवनाधार है, इसलिए वे गुणीजनों की चरण-धूलि बनकर सदैव सच्चे आनंद में लीन रहते हैं।

गुरु पातशाह पावन फरमान करते हैं कि (प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पूजा-अर्चना की विधि का गुमान है।) मुसलमान अपनी शरियत अर्थात् नियम-कानून की प्रशंसा करते हैं तथा उन्हें बार-बार पढ़ते हैं और उस पर विचार करते हैं। उनका यह मानना है कि जो बंदा खुदा का दीदार करने के लिए शरियत की बंदिश (नियम-बंधन) में बना रहता है वास्तव में वही बंदा अर्थात् इंसान है।

हिंदू अपने शास्त्रों के माध्यम से प्रशंसायोग्य प्रभु की प्रशंसा करते हैं। वे तीर्थों पर स्नान करते हैं; (मूर्तियों की) पूजा-अर्चना करते हैं तथा चंदन आदि सुगंधित पदार्थों का इस्तेमाल करते हैं।

योगी लोग समाधि लगाकर प्रभु की बंदगी करते हैं तथा 'अलख-अलख' नाम उच्चारण करते हैं। उनके चिंतनानुसार प्रभु का आकार सूक्ष्म है, माया के प्रभाव से परे है और सारी जगत-रचना उसी (निर्गुण-निराकार) का साकार रूप है अर्थात् इस दृश्यमान जगत का सारा आकार प्रभु की काया है।

दानी (दान देने वाला) मनुष्यों के मन में दान देने के ख़्याल-मात्र से ही खुशी पैदा होती है अर्थात् किसी ज़रूरतमंद को दान देकर उसकी ज़रूरत पूरी करने का भाव ही उनके हृदय को खुशी एवं आनंद से भरपूर कर देता है। वे दान देकर परमेश्वर से हज़ार गुना मांग लेते हैं और (बाहर) संसार उनके दान देने की प्रशंसा करता है। बेशक वे जितना दान करते हैं उससे

**२/१०४, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४, फोन : ९९२९७-६२५२३*

कई गुना ज्यादा प्रभु से मांगते हैं और उन्हें मिलता भी है लेकिन उसमें से भी दान देने का भाव उन्हें जग में शोभा दिलवाता है।

संसार में अनेक चोर, व्यभिचारी, दुष्ट, झूठे एवं विकारी मनुष्य भी हैं जो अपने पिछले पुण्य कर्मों (पूर्व जन्म की कमाई) को भी समाप्त करके इस दुनिया से खाली हाथ चले जाते हैं। यह सब उनके वश में नहीं होता बल्कि ईश्वर ने ही उन्हें ऐसे कर्मों में लिप्त किया है अर्थात् उसी की रज़ा में एवं पूर्व जन्मों के कर्मफल अनुसार कोई नेक कर्म करता हुआ जीवन संवार जाता है और कोई बुरे कर्मों द्वारा (जीवन रूपी बाज़ी हारकर) खाली हाथ चला जाता है।

जल में रहने वाले (जलचर); थल (धरती) पर बसने वाले जीव, पुरियों और त्रिभुवन (तीन लोकों) एवं दृष्टिमान जगत तथा खंडों-ब्रह्मांडों के जीव जो कुछ भी कहते हैं सब कुछ तुम जानते हो। उन सबको तुम्हारा ही सहारा है और तुम ही सब जीवों की सार-संभाल रखते हो।

गुरु नानक पातशाह पावन फरमान करते हैं कि भक्त-जनों को केवल प्रभु की स्तुति-सराहना करने की भूख लगी हुई है और परमेश्वर का नाम-सिमरन ही उनके जीवन का सहारा है, आधार है। वे सदैव (प्रभु-सिमरन के) आनंद में रहते हैं तथा स्वयं को गुणवानों के चरणों की खाक समझते हैं।

उपरोक्त सलोक में पांच तरह के लोगों (उनके स्वभाव एवं पूजा-अर्चना के ढंग आदि) के बारे में बताया गया है :

१. मुसलमानों की शरियत और नियमों की बंदिश।

२. हिंदू मत द्वारा तीर्थ-स्नान, मूर्ति-पूजा एवं सुगंधित पदार्थों से अपने इष्ट की आराधना।

३. योगी-जनों का समाधि की अवस्था में लीन होकर, अलख-अलख उच्चारण करना तथा ध्यान की अवस्था में प्रभु के सूक्ष्म रूप के दर्शन करना।

४. दानी दान करके किस प्रकार आनंद की अनुभूति करते हैं और दानी स्वभाव के कारण किस प्रकार वे शोभा पाते हैं।

५. इसके अतिरिक्त संसार में अनेक विकारी-जन भी हैं जो विकारों में ग्रस्त होकर अपने पूर्व जन्म की कमाई भी बर्बाद कर बैठते हैं।

लेकिन ये सब परमेश्वर के हुक्म में ही (अच्छे या बुरे) कर्मों में लिप्त हैं। भक्त-जनों को तो प्रभु ने अपने नाम की भूख लगा दी है। इस आत्मिक खुराक के बिना वे जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते। श्री गुरु नानक पातशाह की पावन बाणी में अन्यत्र भी इसी भाव के दर्शन होते हैं :

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥
आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥
उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥१॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥
साचा साहिबु साचै नाइ ॥ *(पन्ना ९)*

अर्थात् जैसे ही मैं परमेश्वर का नाम-सिमरन करता हूं तो आध्यात्मिक रूप से जीवित हो उठता हूं। अगर उसे विस्मृत करता हूं तो मेरी आत्मिक मौत हो जाती है। जिस व्यक्ति को प्रभु-नाम की भूख लगती है तो उस भूख के फलस्वरूप ही उसके समस्त दुख दूर हो जाते हैं। प्रभु मुझे कभी न भूले, क्योंकि प्रभु ही सच्चा साहिब है और उसका नाम ही सत्यस्वरूप है।

हम सबको भी परमेश्वर के नाम-सिमरन की भूख लगे, इसके लिए अरदास करनी चाहिए। शारीरिक तल पर लगी भूख हमें केवल

दुनियावी पदार्थ मांगने एवं कमाने पर मज़बूर करती है लेकिन आत्मिक तल पर लगी भूख प्रभु-सिमरन से ही तृप्त होती है और हमारा लोक-परलोक सफल बना देती है और हम तब भिखारी नहीं रह जाते बल्कि उच्च आत्मिक अवस्था के मालिक बनकर विनम्रता के पुंज बन जाते हैं।

म : १ ॥
मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ॥
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ॥
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ॥२॥

श्री गुरु नानक देव जी द्वारा उच्चारण किया गया यह सलोक एक गहरे तथ्य को उजागर करता है। एक ऐसी हकीकत जिससे प्रत्यक्ष रूप से तो हम रोज़ मुख मोड़ते हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से यह हमारे वहमों-भ्रमों पर कुठाराघात करती प्रतीत होती है। जब प्राणी के पांच भौतिक शरीर से प्राणवायु समाप्त हो जाती है अर्थात् प्राण पखेरू उड़ जाते हैं तो मृतक शरीर को जला दिया जाता है। इस्लाम मतानुसार मृतक शरीर को दफ़नाया जाता है भाव धरती में गाड़ दिया जाता है। दोनों ही धर्मों को मानने वाले अपने क्रिया-कलापों, संस्कारों को श्रेष्ठ मानते हैं जबकि गुरबाणी आशयानुसार ऐसा नहीं है। तकदीर का फैसला जीवन में किए गए कर्मों द्वारा होता है। (इस्लाम के मतानुसार मृत्यु के बाद जिनका शरीर जलाया जाता हैं वे नरक की आग में जलते हैं और जिन्हें दफ़नाया जाता है वे जन्नत अर्थात् स्वर्ग में जाते हैं।) गुरु पातशाह के चिंतनानुसार जहां मुसलमान मुर्दे को गाड़ते हैं उस स्थान की (अक्सर) कुम्हार मिट्टी बर्तन बनाने के लिए ले आते हैं, क्योंकि वह मिट्टी चिकनी होती है। उस मिट्टी से वह बर्तन तथा ईंटें बनाता है। जब इन कच्चे बर्तनों-ईंटों आदि को पकाने के लिए भट्ठी (आग) में डालता है उस भट्ठी में सड़ती (जलती) हुई मिट्टी मानों रोती है। उसमें से जलते हुए अंगारे झर-झर कर गिरते हैं। गुरु पातशाह पावन फरमान करते हैं कि जिस परमेश्वर ने संसार की माया रची है उसका वास्तविक भेद भी वही जानता है। मृतक शरीर को जलाने या दबाने से नरक-स्वर्ग का कोई लेना-देना नहीं है। ऐसे लेखे-जोखे को जानने वाला अकाल पुरख खुद है।

गुरबाणी चिंतनानुसार जीव जीते-जी जो कर्म करता है उसके बार-बार किए हुए कर्मों से संस्कार बनते हैं जिनको वह अपने साथ उकेर कर ले जाता है और उसके अनुसार ही उसका लेखा-जोखा होता है। मृतक शरीर की अंतिम क्रिया से स्वर्ग-नरक का कोई सरोकार नहीं। गुरबाणी में यही समझाया गया है कि पुण्य और पाप कर्म कहने मात्र के लिए नहीं हैं अपितु इन्हें जीव संस्कार रूप में अपने साथ ले जाता है और अपने द्वारा बोए गए कर्म रूपी बीज का फल जीव को स्वयं ही भोगना पड़ता है :

पुंनी पापी आखणु नाहि ॥
करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु ॥
नानक हुकमी आवहु जाहु ॥ *(पन्ना ४)*

गुरबाणी हमारा मार्गदर्शन करती है कि जब अपने ही कर्मों का फल भोगना है तो बुरे कर्म क्यों किए जाएं ?

जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ॥ *(पन्ना ४७४)*

जीव को कर्म करते हुए सुचेत रहना चाहिए कि कर्म रूपी बीज के अनुसार ही फसल

तैयार होनी है। यह प्रकृति का अटल नियम है कि कोई नीम का पेड़ बोकर आम का फल नहीं प्राप्त कर सकता ।

पउड़ी ॥

बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ॥

सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ॥

सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ॥

उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ॥

जगजीवनु दाता पाइआ ॥६॥

गुरु नानक पातशाह ने इस पउड़ी में पूर्ण सतिगुरु के महत्त्व को दर्शाया है कि सतिगुरु के बिना परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यकीनन सतिगुरु की शरण के बिना प्रभु को कोई भी पाने में समर्थ नहीं हुआ। समस्त चतुराइयों से यह विचार श्रेष्ठ है कि जीव अपने सतिगुरु के चरणों में चित्त जोड़े और ईश्वर को पा ले।

श्री गुरु नानक देव जी पावन फरमान करते हैं कि बिना सतिगुरु की कृपा से परमेश्वर को न तो पहले किसी ने पाया है और न ही पा सकेगा अर्थात् गुरु की रहमत के बिना न जीवन-दाता प्रभु किसी को मिला है और न ही आने वाले समय में मिलेगा। प्रभु की प्राप्ति के लिए गुरु की शरण अति आवश्यक है क्योंकि उसके बिना प्रभु-प्राप्ति नामुमकिन है।

वास्तव में प्रभु ने स्वयं को सतिगुरु के अंदर ही रखा हुआ है। अब इस तथ्य (गूढ़ रहस्य) को हमने सबके समक्ष प्रकट कर दिया है। कहने से तात्पर्य, श्री गुरु नानक देव जी ने मानो डंके की चोट पर सबके सामने इस रहस्य को उजागर कर दिया है कि परमेश्वर सदैव सच्चे गुरु में ही समाया हुआ है।

मोह से रहित गुरु अगर किसी जीव को मिल जाए तो उस जीव को मोह-माया के बंधनों से मुक्त हुआ जानो अर्थात् मोह-माया से निर्लेप गुरु ही जीव को इन भारी बंधनों से मुक्त रखने की सामर्थ्य रखता है। गुरबाणी में अन्यत्र भी गुरु-महिमा का बखान हुआ है। ऐसे गुरु से बारंबार बलिहार जाएं जो स्वयं मुक्त है और इस भवसागर से जीव को पार उतारने की सामर्थ्य रखता है :

ऐसे गुर कउ बलि बलि जाईऐ आपि मुकतु मोहि तारै ॥ (पन्ना १३०१)

समस्त विचारों से सर्वोच्च विचार यही है कि जिस मनुष्य ने सच्चे सतिगुरु से चित्त जोड़ा है उसने ही जगजीवन दाता परमेश्वर को प्राप्त कर लिया समझो। चिंतकों के चिंतनानुसार जब परिपूर्ण परमेश्वर किसी पर मेहरबान होता है तो उसे पूर्ण गुरु मिला देता है तथा पूर्ण गुरु की कृपा-दृष्टि से प्रभु की प्राप्ति हो जाती है। गुरु ही मुक्ति-दाता है जो जीव को हरि-नाम की औषधि देकर यमों के फंदे से मुक्त कर देता है। गुरबाणी में सर्वत्र ही गुरु-महिमा का बखान है :

मेरा बैदु गुरू गोविंदा ॥

हरि हरि नामु अउखधु मुखि देवै काटै जम की फंधा ॥ (पन्ना ६१८)

ऐसे सतिगुरु-वैद्य से हरि-नाम की औषधि प्राप्त करने वाले जीव के समस्त विकार व रोग निवृत्त हो जाते हैं तथा वह सहजता से जीते-जी मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। गुरबाणी से दिशा-निर्देश लेकर उसके अनुसार जीवन बना लेने वालों का लोक-परलोक सफल हो जाता है।

ख़बरनामा

जून, १९८४ के घल्लूघारे के शहीदों को श्री अकाल तख़्त साहिब पर भेंट की गई श्रद्धांजलि

श्री अमृतसर : ६ जून : जून, १९८४ में श्री हरिमंदर साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब पर हुए फौजी आक्रमण के दौरान शहीद हुए सिंघों-सिंघनियों की ३२वीं सालाना याद को श्री अकाल तख़्त साहिब पर मनाया गया। इस अवसर पर श्री अखंड पाठ साहिब के भोग डाले गए तथा गुरबाणी-कीर्तन हुआ।

इस अवसर पर श्री अकाल तख़्त साहिब के जत्थेदार सिंघ साहिब ज्ञानी गुरबचन सिंघ ने अपने संदेश में संगत को संबोधित होते हुए कहा कि आज खालसा पंथ उन महान शहीदों को श्रद्धा-सुमन अर्पित कर रहा है, जिन्होंने जून, १९८४ में कांग्रेस सरकार द्वारा श्री हरिमंदर साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब पर करवाए गए फौजी हमले के दौरान जूझते हुए शहादत प्राप्त की। उन्होंने कहा कि ३२ वर्ष बीत जाने के बाद भी हमें जून, १९८४ का साका बीते हुए कल की तरह घटित हुआ लग रहा है, जब समूची दुनिया को प्यार, शांति एवं एकता का संदेश देने वाले महान पवित्र स्थान श्री हरिमंदर साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब की परिक्रमा भारतीय फौज के टैंकों के गोलों ने श्रद्धालु सिक्खों के खून से लथपथ कर दी थी। सिक्ख कौम के सीने में लगे ये ज़ख़्म अभी भी ताजा हैं। समय की कांग्रेस सरकार अपनी इस घिनौनी कार्यवाही को भूल जाने की दुहाई देती है, मगर इसके दर्द का उस कौम को पता है जिसके सिर पर बीती है। उन्होंने कहा कि हमें गर्व है श्री गुरु नानक देव जी तथा श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी द्वारा सुसज्जित इस महान कौम पर जिन्होंने हमेशा ही अपने महान शहीदों, शूरवीरों, योद्धाओं को कभी नहीं भुलाया।

ज्ञानी गुरबचन सिंघ ने कहा कि १०० वर्ष बाद कनाडा के प्रधानमंत्री ने कामागाटामारू के उन महान शहीदों को श्रद्धा भेंट करते हुए हुई बज्जर गलती के लिए माफी मांगी है, जिसकी खालसा पंथ प्रशंसा करता है। हमारे देश के हाकिम बहुसंख्या के ज़ोर से आज भी साका नीला तारा के बारे में कोई लफ़्ज़ कहने से गुरेज़ कर रहे हैं, जो कि हमारे लिए और भी दुखदायी है। उन्होंने कहा कि हमें आज अपने अंदर झांकने की अत्यंत ज़रूरत है। आज सिक्खी सिद्धांतों तथा सिक्ख रहित मर्यादा के मसलों के बारे में विवाद पैदा करके सिक्खी के दुश्मन शातिर चालें चल रहे हैं।

उन्होंने कहा कि जहां हम गत समय के दौरान सरकारी ज़ब्र, अन्याय तथा भेदभाव का शिकार हुए हैं वहीं बड़े दुख की बात है कि आज कौम आपसी फूट का भी बुरी तरह से शिकार हो चुकी है। उन्होंने कहा कि आज हम अपने विरोधियों तथा पंथ-दोखियों के खिलाफ़ लड़ाई लड़ने की बजाय भाई-मारू जंग की तरफ बढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब के अपमान की रोज़ हो रही घटनाएं रुकने में नहीं आ रहीं। उन्होंने कहा कि पीलीभीत कांड जैसे हृदयवेधक हादसे हमें सिर से लेकर पैरों तक झिंझोड़ रहे हैं। इस सबके हल के लिए तथा इंसाफ-प्राप्ति के लिए हम सबको श्री अकाल तख़्त साहिब की छत्र-छाया तले एकत्र होने की आवश्यकता है ताकि हम

भाई-मारू जंग से निजात पा सकें। उन्होंने कहा कि आज न हमें अपनी सर्वोच्च संस्थाओं के सत्कार की चिंता है, न हम संगत-पंगत के सिद्धांत समझ रहे हैं और न ही अपनी शक्ति के टूटने का खतरा महसूस कर रहे हैं। उन्होंने सारी नौजवान पीढ़ी को अपील करते हुए कहा कि इस समय वह अपनी शक्ति को कौम के उज्जवल भविष्य के लिए इस्तेमाल करे, जिससे कौम चढ़दी कला में हो। उन्होंने नौजवानों से कहा कि आज के जमाने में जो सुविधाएं या साधन हमारी कौम के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं उनको बड़ी सावधानी से इस्तेमाल करने की ज़रूरत है। उन्होंने सोशल मीडिया पर हो रहे कूड़ प्रचार से बचने के लिए भी कहा। उन्होंने कहा कि आओ! जून, १९८४ के घल्लूघारा दिवस पर समूह शहीदों की याद को अपने सीने में बसाकर अपने अंदर कौमी स्वाभिमान का जज़्बा पैदा करें। इस संकल्प का सदका ही श्री हरिमंदर साहिब तथा श्री अकाल तख़्त साहिब की इंकलाबी स्प्रिट को कायम किया जा सकता है।

इस अवसर अन्य तख़्त साहिबान के जत्थेदार साहिबान, सिंघ साहिबान तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष जत्थेदार अवतार सिंघ के अलावा धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र की हस्तियां व बड़ी संख्या में संगत उपस्थित थी।

विश्व पंजाबी भाषा सम्मेलन अब २५-२६ सितंबर को होगा

श्री अमृतसर : १२ जून : खालसे की जन्म-भूमि श्री अनंदपुर साहिब के विरासत-ए-खालसा में २६-२७ जून को होने वाला विश्व पंजाबी भाषा सम्मेलन अब २५-२६ सितंबर को होगा।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के वक्ता तथा अतिरिक्त सचिव स. दिलजीत सिंघ ने जानकारी देते हुए बताया कि जत्थेदार अवतार सिंघ, अध्यक्ष, शिरोमणि गु. प्र. कमेटी के दिशा-निर्देश पर शिरोमणि गु. प्र. कमेटी द्वारा मातृ-भाषा पंजाबी को और अधिक प्रफुल्लित करने हेतु आयोजित किए गए सम्मेलन में अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, पाकिस्तान आदि देशों से पंजाबी भाषा के माहिर विद्वानों तथा पंजाबी को प्यार करने वालों को २५-२६ जून को श्री अनंदपुर साहिब में होने वाले विश्व पंजाबी सम्मेलन में शिरकत करने का न्यौता दिया गया था, किंतु पड़ोसी देश पाकिस्तान से जनाब फख़र जमान की अगुआई में आने वाले पंजाबी भाषा माहिरों का उक्त तारीख को श्री अनंदपुर साहिब आने के लिए वीजा नहीं लग सका।

उन्होंने बताया कि दूसरा कारण पंजाब सरकार द्वारा बाबा बंदा सिंघ बहादुर के ३०० वर्षीय शहीदी दिवस की याद में चप्पड़चिड़ी में २६ जून को राज्य स्तर पर सम्मेलन करवाया जा रहा है, इसी लिए यह सम्मेलन आगे कर दिया गया है। उन्होंने कहा कि अब यह समागम २५-२६ सितंबर, २०१६ को खालसे की जन्म-भूमि श्री अनंदपुर साहिब में स्थित विरासत-ए-खालसा में ही करवाया जाएगा। उन्होंने कहा कि शिरोमणि गु. प्र. कमेटी द्वारा जल्द ही इस सम्मेलन में शामिल होने वाली शख़्सियतों से संपर्क करके उनको सूचित कर दिया जाएगा।

*प्रिंटर व पब्लिशर स. दिलजीत सिंघ ने गोल्डन आफसेट प्रेस, गुरुद्वारा रामसर साहिब, श्री अमृतसर से छपवा कर मालिक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिए कार्यालय, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर से प्रकाशित किया। प्रकाशित करने की तिथि : **01-07-2016***